सिरिसीयलणाह–चरियं

(श्री शीतलनाथ चरित्र)

मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत
आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रन्थकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य
श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक (सर्वाधिकार सुरक्षित)
निर्ग्रन्थ ग्रन्थ माला समिति
ई॰–102 केशर गार्डन, सै॰ 48, नोएडा–201301
मो॰ 9971548899, 9867557668

ग्रंथ : सिरिसीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रन्थकार : अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण : प्रथम, वर्ष 2022 ई॰

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : सदुपयोग

ISBN : 978-93-94199-07-1

प्राप्ति स्थान :

निर्ग्रन्थ ग्रन्थ मालासमिति
ई॰ 102 केशर गार्डन,
सै॰ 48, नोएडा-201301
मो॰ 9971548899, 9867557668

पुरोवाक्

जीवन में शब्दों का बहुत बड़ा-प्रभाव पड़ता है। शब्द शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। जो शब्द गुणवान्, महापुरुष एवं परमात्मा के गुणों का व्याख्यान करने, वस्तु तत्त्व के यथार्थ स्वरूप का वर्णन आदि करने में समर्थ होते हैं वे शब्द अच्छे या शुभ की श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत कर्कश, कष्टदायक, हिंसादि का पोषण करने वाले शब्द अशुभ की श्रेणी में आते हैं। महापुरुषों का जीवन चरित्र पुण्य का निमित्त होता है क्योंकि गुणों के कोष रूपी उस चरित्र में गुणों की चर्चा है, जिससे राग-द्वेषादि की प्रवृत्ति में भी कमी आती है। गुणों की चर्चा करने से जीवन में गुणों का प्रादुर्भाव होता है। श्रेष्ठ जीवन चरित्र को पढ़ने व सुनने से श्रेष्ठता की वृद्धि होती है। इससे स्वयं का जीवन भी आदर्श बनता है और दूसरों के लिए भी प्रेरणादायी बनता है।

नैतिक मूल्यों का संवर्द्धन, संस्कारों व सभ्यता का बीजारोपण, हित-अहित का समीचीन परिज्ञान, परिवार-समाज-देश व राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों का ज्ञान, अहिंसा-क्षमा-सत्यादि गुणों का विकास इत्यादि महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ने व सुनने से होता है।

शलाका पुरुष 63 होते हैं। 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण व 9 प्रतिनारायण- अथवा इनमें 24 कामदेव, 14 कुलकर, 11 रुद्र व नारद इत्यादि मिलाने पर 169 महापुरुष होते हैं। महापुरुषों का जीवन चरित्र सदैव प्रेरणादायी होता है। यहाँ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने लोकातिशायी व्यक्तित्व के धारक दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान् के चरित्र को महाकाव्य की विधा में लिपिबद्ध किया है। श्री शीतलनाथ भगवान् का चरित्र उत्तरपुराणादि में अत्यंत संक्षेप में तो मिलता है किन्तु प्रथम बार ही वृहद् रूप में इसे पढ़ने व सुनने का सौभाग्य आचार्य श्री की महती कृपा से प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा प्राकृत भाषा में हजारों गाथाओं व श्लोकों रूपी मणियों से युक्त कई प्राकृत ग्रंथ रूपी मालाओं का निर्माण हो चुका है जिनमें सैद्धान्तिक, आध्यात्मिक, आचारयुक्त, नय-न्याय-नीति-संस्कृति, सभ्यता, भक्ति आदि पर आधारित ग्रंथ हैं यथा-रट्ठसंति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ), णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद-सूत्र), अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति), कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव), विस्स-धम्मो (विश्व धर्म), णमोयार-महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य), अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार), तच्च-सारो (तत्त्व सार), मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र), विज्जावसुसावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार), अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार), को विवेगी (विवेकी कौन), णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रंथ स्तुति), जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र), जदि-किदिकम्मं

(यतिकृतिकर्म), पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय), तित्थयरणामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति), सुद्धप्पा (शुद्धात्मा), अट्ठंग-जोगो (अष्टांग योग) इत्यादि। किन्तु प्रथमानुयोग का यह ग्रन्थ प्रथमतः ही प्राप्त हुआ।

इस महाकाव्य में 714 श्लोक व 12 सर्ग हैं। श्रृंगार रस, वीररस, करुण रस आदि अंग के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं व शांत रस अंगी है। धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष पुरुषार्थों में से मोक्ष पुरुषार्थ महाकाव्य का फल है। यह संपूर्ण महाकाव्य प्राकृत भाषा में गाथा छंद में अनुबद्ध है। जिसमें चार चरण होते हैं। पहले व तीसरे चरण में 12-12 मात्राएँ, दूसरे चरण में 18 मात्राएँ व चतुर्थ चरण में 15 मात्राएँ होती हैं। सर्ग के अंत में वसंततिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, रथोद्धता, स्वागता, पृथ्वी, शिखरिणी, मंदाक्रांता, वनवासिका इत्यादि छंद प्रयुक्त हैं।

यूँ तो आचार्य श्री द्वारा लिखे गए छंदोबद्ध विधानादि में अथवा लगभग 100 छंदों में निबद्ध श्री सर्वतोभद्र महार्चना व अन्य रचनाओं से उनका कवि हृदय स्पष्ट दिखाई देता है किन्तु प्राकृत में महाकाव्य की इस रचना से आचार्य श्री का महाकवित्व व विशिष्ट पांडित्य परिलक्षित होता है। विभिन्न अलंकार, रस व छंदों से युक्त **''सिरिसीयलणाह-चरियं''** नामक महाकाव्य विषय-कषायों की ऊष्णता का शमन कर शीतलता प्रदान करने में समर्थ है। इस ग्रन्थ के 12 सर्गों में विषयवस्तु इस प्रकार है।

प्रथम सर्ग–यह सर्ग कथापीठिका का वर्णन करने वाला है। भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में राजा श्रेणिक ने 60,000 प्रश्न पूछे थे। उनमें, दशमी व्रत में पूज्य श्री शीतलनाथ भगवान् का चरित्र भी पूछा। तब श्री इंद्रभूति गौतम गणधर स्वामी ने इस महापुण्यकारक चरित्र को कहा था। उन्हीं के अनुसार इस ग्रंथ को कहने की प्रतिज्ञा कर आचार्य श्री ने इसे स्वयं प्रमाणिकता प्रदान की। यथा-

इंदभूदि-गोदम-गणहरेण पुण जहा वण्णिदं चरियं।
तहा हु सीयलणाहं, तित्थयरं परियंदिदूणं॥28॥
सुपुण्णवड्ढगं पाव-हारगं णिम्मलं सय सुह-हेदुं।
अण्णाण-तम-णासगं, दोसहारगं सुह-पवित्तं॥29॥
परंपराणुसारेण, सवरविसुद्धीए सत्तीए तं।
वसुणंदि-सूरी वदमि, भत्तीए गुरुपसादेणं॥30॥

उस समय श्री इंद्रभूति गौतम गणधर ने जिस प्रकार श्री शीतलनाथ प्रभु का चरित्र कहा था उसी प्रकार श्री शीतलनाथ तीर्थंकर प्रभु की स्तुति कर परम्परानुसार सुपुण्यवर्द्धक, पापहारक,

निर्मल, सदा सुख के हेतु, अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला, दोषहारक, शुभ, पवित्र श्री शीतलनाथ चरित्र को स्वपर की विशुद्धि के लिए शक्ति व भक्ति से, गुरुकृपा से मैं आचार्य वसुनंदी कहता हूँ।।28-30।।

द्वितीय सर्ग–यहाँ तीन लोक में मध्य लोक, मध्य लोक में ढाई द्वीप उसमें भी पूर्व पुष्करार्द्ध विदेह क्षेत्र में सुसीमा नामक नगरी का सुन्दरतम वर्णन करते हैं, जहाँ राजा पद्मगुल्म (श्री शीतलनाथ भगवान् का पूर्व भव) का राज्य था। वहाँ की व्यवस्था, सौंदर्य, राजा के गुण व भोगों का वर्णन इस सर्ग के अंतर्गत है।

तृतीय सर्ग–यहाँ बसंत ऋतु के सौंदर्य के नष्ट होने पर राजा पद्मगुल्म के संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति का वर्णन करते हैं। राजा पद्मगुल्म के वैराग्यपूर्ण भावों को दर्शाने वाला एवं संसार व भोगों की अनित्यता का परिज्ञान कराने वाला यह तीसरा सर्ग है।

चतुर्थ सर्ग–राजा पद्मगुल्म सर्व परिग्रह का परित्याग कर वन में जाकर श्री आनंद मुनिराज से सर्वकल्याणकारिणी निर्ग्रंथ दीक्षा को स्वीकार कर लेते हैं। रत्नत्रय से अपनी आत्मा को सुशोभित कर विशुद्ध चर्या का पालन करते हुए सोलहकारण भावनाएँ भाते हैं और श्रेष्ठतम तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति का बंध कर लेते हैं। पुनः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र व सम्यक् तप की आराधना करते हुए उत्तम समाधिमरण अर्थात् प्रायोपगमन मरण को प्राप्त हुए।

पंचम सर्ग–मरण प्राप्त कर वे पंद्रहवें आरण स्वर्ग में इंद्र होते हैं। यहाँ उनके सुंदर दिव्य शरीर, अवगाहना, प्रवीचार, आहार, श्वासोच्छ्वास, धर्मध्यानादि का मनोरम वर्णन किया। पुनः आयु पूर्ण होने के छः मास पूर्व मनुष्यायु का बंध करना, सौधर्मेंद्र की आज्ञा से कुबेर इंद्रादि द्वारा भद्दिल नगरी का निर्माण करना, राजा दृढ़राज व रानी सुनंदा का वर्णन व दंपत्ति द्वारा पुण्यवान् पुत्र की कामना का सुंदर वर्णन इस सर्ग में है।

षष्टम सर्ग–महारानी सुनंदा द्वारा गर्भ धारण करना, रात्रि के अंतिम पहर में सोलह स्वप्नों का देखना, पुनः राजा से उनके फलों को पूछना, राजा द्वारा उनका सुखद व्याख्यान करना, सौधर्मेंद्र की आज्ञा से गर्भवती जगत् जननी की सेवा में अष्टकुमारियों का नियुक्त होना, पहेली आदि के द्वारा माँ का मनोरंजन करना इत्यादि का वर्णन इस सर्ग में है। आचार्य श्री द्वारा लिखी गई पहेलियाँ इसे और अधिक रोचक बनाती हैं। यथा–

को पज्जलेदि जीवा, कं कणदि सोहग्गिअ-इत्थिकरेसु।
किं करदे सय सेवं, संभालदि कं डगमगंतं।।314।।

जीव को कौन जलाता है? सौभाग्यशाली स्त्री के हाथों में क्या आवाज करता है? सदा सेवा कौन करता है? तथा डगमगाते हुए को कौन संभालता है? इस प्रकार पूछने पर इसी प्रश्न में छिपे

उत्तरों को दिया–कोप, कंकण, किंकर एव कंड (कांड) जीव को क्रोध जलाता है, सौभाग्यशाली स्त्री के हाथों में कंगन आवाज करता है, सदा सेवा किंकर करता है एवं डगमगाते हुए को कांड (डंडा) संभालता है।

सप्तम सर्ग–गर्भकाल पूर्ण होने पर प्राची दिशा में सूर्योदय के समान तीर्थंकर बालक का जन्म होना, देवों द्वारा भगवान् के जन्म कल्याणक हेतु पृथ्वी पर आना, शचि इंद्राणी द्वारा माँ की स्तुति कर माँ के समीप मायामयी बालक को सुलाकर तीर्थंकर बालक को लाना, सौधर्मेंद्र द्वारा सहस्त्र नेत्रों से उन्हें निरखना, जिन बालक की स्तुति करते हुए असीम वैभव के साथ सुमेरु पर्वत की ओर प्रयाण करना। पांडुक शिला पर जन्माभिषेक का मनोज्ञ व रोमांचित कर देने वाला वर्णन इस सर्ग में है।

अष्टम सर्ग–जिन बालक को अलंकृत कर देव समूह का पुनः भद्दिल नगरी पहुँचना, वहाँ इंद्राणी द्वारा माँ की मायामयी निद्रा दूर कर प्रजाजनों के साथ महावैभव युक्त जन्मोत्सव करना। इंद्र द्वारा आनंद नाटक–तांडवनृत्यादि करना पुनः तीन ज्ञानधारी भगवान् के बाल्यकाल में उनकी कुशाग्र व गंभीर मेधादि का वर्णन इस सर्ग के अंतर्गत है।

नवम सर्ग–तीर्थंकर प्रभु की यौवनावस्था, विवाह हेतु पिता का उन्हें समझाना, सुन्दर कन्याओं से उनका विवाह करना, पुत्र जन्म, पश्चात् तीर्थंकर कुमार का अतिशय शोभा युक्त राज्याभिषेक, उनकी राज्य व्यवस्था व शासक के रूप में उनको महिमामंडित करने वाला यह नवम सर्ग है।

दशम सर्ग–हजारों वर्षों पूर्व तक राज्य कर पुनः सूर्य की किरणों द्वारा बिन्दुओं को नष्ट होते देखकर वैराग्य का उत्पन्न होना, संसार–शरीर–भोगों की अनित्यता का चिंतन, बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन, वैराग्य से परिपूरित होना तभी लौकान्तिक देवों द्वारा आकर भगवान् की संस्तुति व उनके वैराग्य की अनुमोदना करना, तीर्थंकर शासक का राज्य त्याग कर वन में जाना, दीक्षादि धारण करना पुनः आहार चर्यादि का वर्णन करने वाला यह दशम सर्ग है।

एकादश सर्ग–महामुनिराज का क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होना, कर्म नाश की विधि, केवलज्ञान प्राप्त होना, देवों द्वारा समवशरण रचना, दिव्यध्वनि का खिरना, केवलज्ञान व देवकृतातिशय इत्यादि का व्याख्याता यह एकादश सर्ग है।

द्वादश सर्ग–सयोग केवली से आयोग केवली होना, क्रमशः कर्म प्रकृतियों का क्षय कर श्री सम्मेद शिखर जी से मोक्ष प्राप्त करना आदि का वर्णन करते हुए परंपराचार्यों का स्मरण करते हुए ग्रंथ का समापन हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रंथ जिनधर्मानुयायिओं, स्वाध्याय प्रेमियों के लिए निश्चित ही अनुपम उपहार है। जिनवाङ्मय में यह ग्रंथ अमूल्य रत्न के समान आदरणीय है। आचार्य श्री के माध्यम से जिनवाङ्मय का जो नित्य संवर्द्धन व संरक्षण हो रहा है वह अभिवंदनीय व अनुकरणीय है। ऐसे श्रुत संरक्षक व संवर्द्धक अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री को श्रद्धापूर्वक कोटि-कोटि नमन करते हैं और साथ ही प्रणाम करते हैं उस उज्ज्वल आचार्य परपंरा को जिस परंपरा की धवलकीर्ति आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज सतत् जिनशासन की प्रभावना, श्रेष्ठ चर्या, तपस्या, ज्ञान व ग्रन्थ लेखनादि के माध्यम से संपूर्ण विश्व में विस्तृत कर रहे हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य **''सिरिसीयलणाह-चरियं''** के संपादन का सौभाग्य मुझ अल्पज्ञ को प्राप्त हुआ यह कार्य मैं कर सकी यह सब आचार्य गुरुवर की कृपादृष्टि व उनका ही उपकार है। भावना भाती हूँ कि मोक्षमार्ग में बढ़ाने वाले, संस्कृति व सभ्यता के संवर्द्धक रूप, जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करने वाले, देश व धर्म को गौरवान्वित करने वाले ग्रंथ अभी तक हमें जैसे प्राप्त हुए हैं, आगे भी वैसे ही प्राप्त होते रहें। जो वर्तमान में तो जन-जन को लाभान्वित कर ही रहे हैं; आगे सहस्रों वर्षों तक भी इनके माध्यम से लोग जिनशासन की छत्रछाया पाकर निज कल्याण की ओर अभिमुख हो सकेंगे।

प्रस्तुत ग्रंथ के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन उसे संशोधित कर पढ़े, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी महाराज का संयम, तप, ज्ञान व साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक संपूर्ण विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं वे अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परम पूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

जैनम् जयतु शासनम्

श्री शुभमिति माघ कृष्ण दशमी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2548
गुरुवार 27/01/2022
सिद्धक्षेत्र शत्रुंजय जी (गुजरात)

-आर्यिका वर्धस्वनंदनी

प्राकृत वाङ्मय की अनुपम धरोहर

–प्राचार्य डॉ. शीतल चन्द्र जैन, जयपुर

भारतीय संस्कृति में जैन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह संस्कृति अनादिकाल से निरन्तर प्रवाहमय है। इसका इतिहास विराट एवं अपरिमेय है। जिसकी थाह तक पहुँचना एक जटिल कार्य है, जिसमें तीर्थंकरों के विषय में लेखनी चलाना तो अत्यन्त दुष्कर कार्य है। यद्यपि चौबीस तीर्थंकरों में कतिपय तीर्थंकरों का वर्णन विस्तार से प्राप्त होता है परन्तु भगवान् शीतलनाथ के विषय में इतने विस्तार से महाकाव्य के रूप में अभी तक अध्ययन करने को नहीं मिला और मिला भी है तो संस्कृत-हिन्दी भाषा में अत्यन्त संक्षेपीकृत है। प्राकृत भाषा में प्रथमानुयोग का यह महाकाव्य प्रथम ही माना जायेगा। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी महाकवि आचार्य वसुनन्दी जी मुनिराज प्राकृत भाषा के कालजयी साहित्य सृष्टा के रूप में मान्य होंगे क्योंकि आपके द्वारा नवीन विषयों पर ही महत्त्वपूर्ण कृतियाँ लिखी जा रही हैं।

''सिरिसीयलणाह-चरियं'' इस महाकाव्य में आपने प्रारम्भ के सर्गों में प्रत्येक विषय पर सजीव वर्णन किया है परन्तु साथ में सैद्धान्तिक चर्चा भी महत्त्वपूर्ण करके श्रावकों को सिद्धान्त का ज्ञान भी कराया है। जैसे आप लिखते हैं कि सुख कर्म से उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह जीव का स्वभाव है और इसलिए कर्म का फल नहीं है। कर्म के उदय से प्राप्त सुख अन्त से युक्त और पाप बन्ध का कारण होता है। इसी प्रकार नर देह का सार क्या है, इस पर आपने महाकाव्य में उत्तम विवेचना की है।

पूरे महाकाव्य को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य श्री जब इस काव्य को लिख रहे होंगे तो आपके हृदय में भगवान् शीतलनाथ ही विराजमान होंगे तभी आपने उनके चरित्र को ऐसा प्रस्तुत किया जैसा कि आपने भगवान् शीतलनाथ के समवशरण में उपस्थित रह कर सब कुछ देखा हो।

वस्तुतः आपने आगम का मात्र स्वाध्याय ही नहीं किया अपितु उसे आत्मसात कर उसे विस्तृत से संक्षिप्त, कठिन से सरल बनाकर रचनाओं के माध्यम उसे समाज और विद्वानों के कल्याणार्थ सौंपा है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि प्राकृत वाङ्मय के क्षेत्र में यह महाकाव्य विद्वानों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेगा और इस महानकृति से प्रेरणा लेकर इस क्षेत्र में कार्य करेंगे।

पूज्य आचार्य श्री के चरणों में कोटिशः नमोऽस्तु सादर निवेदित है।

अनुक्रमांक

1. पढम-सग्गो 10-15
2. विदिय-सग्गो 16-25
3. तिदिय-सग्गो 26-33
4. चदुत्थ-सग्गो 34-39
5. पंचम-सग्गो 40-47
6. छट्ठम-सग्गो 48-61
7. सत्तम-सग्गो 62-73
8. अट्ठम-सग्गो 73-81
9. णवम-सग्गो 82-91
10. दशम-सग्गो 92-105
11. एयारसम-सग्गो 106-115
12. बारसम-सग्गो 116-123

राजा श्रेणिक का भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में जाना

आचार्य वसुनंदी कृत

सिरिसीयलणाह-चरियं

पढम-सग्गो

मंगलाचरण

सव्वण्हुं सगसुद्धप्पजणिद-सीयलत्त-संजुद-ममलं।
सव्वदंसि-सुहियकरं, समाविट्ठं सगप्पगुणेसु।।1।।
सुसरणं संसारीण, सुमग्ग-णिद्देसगं सज्जणाणं।
चउघादिकम्मरहिदं, सिरिसीयलणाहं पणमामि।।2।।
सस्सदं सीयलत्तं, पावेदुं सव्वकम्मक्खयेदुं।
सुहपुण्णविड्ढीए य, वोच्छे सीयलणाहचरियं।।3।।
चदुत्थ-दुस्सम-सुस्सम-यालावसाणे जुगंते होही।
वड्ढमाणतित्थयरो, सिद्धत्थसुदो महावीरो।।4।।

जो सर्वज्ञ अर्थात् संपूर्ण चराचर स्वरूपानुसार द्रव्यों को और उनके समस्त गुणों को व भूत-भावी और वर्तमान संपूर्ण पर्यायों को हमेशा सर्वकाल में प्रतिसमय में एकसाथ जानते हैं, जो अपनी शुद्धात्मा से उत्पन्न शीतलता से युक्त अर्थात् आत्मा में शुद्ध गुणों का प्रकटीकरण होने से संसार के दु:खाताप से रहित हैं, अमल अर्थात् राग-द्वेषादि विकारी भाव रूपी पंक से रहित निर्मल हैं, सर्वदर्शी हैं, सभी का हित करने वाले अर्थात् केवलज्ञानोपरांत दिव्यध्वनि से संसार के भव्य प्राणियों को मोक्षमार्ग का उपदेश देने से सर्व हितैषी अथवा आज भी नाम स्मरण वा गुण चिंतवन से पाप क्षय व सातिशय पुण्यार्जन में निमित्त होने से सर्व सुहितकर हैं, जो स्वात्म गुणों में समाविष्ट हैं, संसारी प्राणियों के लिए श्रेष्ठ व उत्तम शरण हैं, सज्जनों के लिए सम्यक् व समीचीन मार्ग का निर्देश करने वाले, चार घातिया कर्मों (ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय व अंतराय) से रहित श्री शीतलनाथ जिनेंद्र की मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) समीचीन रूप से वंदना करता हूँ।।1-2।। शाश्वत शीतलता अर्थात् वह शाश्वत, नित्य अवस्था जहाँ कदाचित् दु:खांश भी न हो, भवाताप से रहित अविनश्वर अवस्था की प्राप्ति, सर्व कर्मों के क्षय एवं शुभ पुण्य अर्थात् वह प्रशस्त पुण्य जो संसार का कदाचित् भी कारण न होकर मोक्ष का कारण हो, उस पुण्य की वृद्धि के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) श्री शीतलनाथ चरित्र को कहता हूँ।।3।। दु:खमा-सुखमा नामक चतुर्थकाल के अवसान में युग के अंत में श्री सिद्धार्थ राजा के पुत्र तीर्थंकर वर्द्धमान श्री महावीर स्वामी हुए।।4।।

विज्जंतस्स मगधम्मि, रायग्गहि-णिगड-विउलाचलम्मि दु।
वीरस्स थुदी कुणिदा, बद्धकरंजलि-देवेहिं च।।5।।

अण्णाणतमच्छादिद-जगुज्जोदगस्स तियलोयगुरुणो।
केवलणाणलच्छिजुद-तित्थयरस्स णमो भत्तीइ।।6।।

अजेयमहिमावंतं, मोक्खसिरीए पहाणकारणं दु।
रदिपइविजयिं वंदे, पाववाहिणि-हंतुं णिच्चं।।7।।

अब्भुद-विहवजुद-धम्म-सहाइ सोहं वण्णिदुं खमो को।
जत्थ बारससहासुं, णिवज्जिदा भव्वा भत्तीइ।।8।।

तित्थयरं पस्सित्ता, जिणधम्ममियं पिवित्तु संतुट्ठा।
जह तह गिम्हे तविदा, पिविय सीदणिम्मलं णीरं।।9।।

चउविह-देवा देवी, सग-सग-णियदकोट्ठम्मि हु विज्जीअ।
पढमकोट्ठे मुणिंदा, पसंता अज्जिया तिदियम्मि।।10।।

एक समय मगध देश की राजगृही नगरी के निकट विपुलाचल पर्वत पर श्री महावीर स्वामी समवशरण में विराजमान थे। तब देवों ने दोनों हाथों को जोड़कर भगवान् की स्तुति की।।5।। हे! अज्ञान रूपी अंधकार से आच्छादित इस जगत् को प्रकाशित करने वाले प्रभु आपको नमस्कार हो, हे! तीन लोक के गुरु आपको नमस्कार हो, हे! केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी से युक्त तीर्थंकर प्रभु आपको भक्तिपूर्वक नमस्कार हो।।6।। जो अजेय हैं, महिमावान् हैं, मोक्ष रूपी लक्ष्मी का प्रधान कारण हैं, कामदेव को जिन्होंने जीत लिया है, जो पाप रूपी सेना का हनन करने वाले हैं व नित्य हैं उनकी हम वंदना करते हैं।।7।। आश्चर्यकारी वैभव से युक्त उस धर्मसभा की शोभा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है जहाँ बारह सभाओं में भव्य जीव भक्तिपूर्वक विद्यमान थे।।8।। तीर्थंकर प्रभु के दर्शन कर व जिनधर्म रूपी अमृत का पान कर भव्य जीव उसी प्रकार संतुष्ट हो रहे थे जिस प्रकार ग्रीष्म काल में तपित व्यक्ति शीतल निर्मल जल को पीकर संतुष्ट होते हैं।।9।। समवशरण में चारों प्रकार के देव-देवी अपने-अपने नियत कोठे में अर्थात् कल्पवासिनी देवियाँ दूसरे कोठे में, चतुर्थ कोठे में ज्योतिष देवियाँ, पंचम कोठे में व्यंतर देवियाँ छठे कोठे में भवनवासिनी देवियाँ, सप्तम कोठे में भवनवासी देव, आठवे कोठे में व्यंतर देव, नवमे कोठे में ज्योतिष देव, दसवे कोठे में वैमानिक देव स्थित थे। प्रथम कोठे में मुनि, तीसरे कोठे में प्रशांत आर्यिकाएँ विद्यमान थीं।।10।।

एयारसम-कोट्ठम्मि, मणुस्सा धम्मणुरत्ता भत्तीइ।
बारसमे तिरिया तह, सम्माइट्ठी अणुव्वदी वि।।11।।
पडिदिवसे णिस्सरिदा, जिणस्स दिव्वज्झुणी चउसंझासु।
छघडिगाए वि अहवा, पुण्णवंत-सोदु-णिमित्तेण।।12।।
सव्वंगेण सव्वदा, मिदंगझुणीव णिक्कंखभावेण।
भव्व-कल्लाणत्थं च, मोक्खमग्गपविट्टीए खलु।।13।।
एयदा मगहराओ, अजादसत्तु-जणगो बिंबसारो।
सेणिगो वा दु चेडग-जामादू पदी चेलणाइ।।14।।
सीहासणारूढो दु, सरायगहिरायहाणीइ दुग्गे।
छरिदूण पुप्फफलेहि, सह आगद-वणपालगेणं।।15।।
तदा णमित्ता कहिदं, बद्धकरंजलीए दु भो सामी।
अइ-आणंदिदा सव्व-जीवा पइडी तव पुण्णेण।।16।।
सव्वपहावो अंतिम-तित्थयर-वीर-जिण-सव्वण्हुस्स दु।।
ठिदो विउलाचलम्मि य, भव्वाणं पुण्ण-णियोगेण।।17।।
तस्स वयणं सुणित्ता, धम्मी राओ होज्ज अइ-पसण्णो।।
देज्ज सगमुल्ल-हारं, वणपालगस्स पुरक्कारे।।18।।

ग्यारहवे कोठे में भक्तिपूर्वक धर्मानुरक्त मनुष्य तथा बारहवे कोठे में सम्यग्दृष्टि और अणुव्रती तिर्यंच भी विद्यमान थे।।11।। जिनेंद्र भगवान् की दिव्यध्वनि प्रतिदिन चारों संध्याकालों में छः घड़ी के लिए अथवा पुण्यवान् श्रोता के निमित्त से निःसृत होती थी।।12।। दिव्यध्वनि सर्वदा मृदंग की ध्वनि के समान सर्वांग से व निःकांक्ष भाव से भव्यों के कल्याण के लिए एवं निश्चय से मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति के लिए थी।।13।। एक बार अजातशत्रु के पिता, राजा चेटक के दामाद, चेलना के पति मगधराज श्रेणिक वा बिंबसार अपनी राजधानी राजगृही में, दुर्ग में सिंहासन पर आरूढ़ थे। तभी एक वनपालक छः ऋतुओं के फल- फूल एक साथ लेकर उपस्थित हुआ और राजा को प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा, हे स्वामी! आपके पुण्य से सभी जीव और प्रकृति भी आनंदित है।।14-16।। यह सब प्रभाव अंतिम तीर्थंकर सर्वज्ञ श्री वीर जिनेंद्र का है जो भव्यों के पुण्य के नियोग से विपुलाचल पर्वत पर स्थित हुए हैं।।17।। उस वन पालक के वचन सुनकर यह धर्मी राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसके लिए अपना अमूल्य हार पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया।।18।।

तदा सग-आसणादो, उट्ठिय ताए दिसाइ सत्तपदं।
गमिदूण विसुद्धीए, करीअ सुदंडणमोक्कारं।।19।।

रायाणाइ घोसणा, होज्ज णयरे णिवो गच्छेज्ज सुवे।
सपरियरो महावीर-सामिस्स दंसणाय विउलं।।20।।

आउलत्ताणंदेहि, जवीअ रत्ती सम्मादिट्ठीणं।
पहादे रायकुडुंब-मंति-आइ-पया गच्छेज्जा।।21।।

सव्वा वंदणं कडुअ, अच्छेज्ज सग-कोट्ठे समवसरणे।
पहाण-सोदू रायो, पदक्खिदूण थुवेज्ज इत्थं।।22।।

सिरिवड्ढमाणदिवीर-वीर-सम्मदि-महावीर-जिणिंदं।
पणमामि वीयरायिं, सव्वण्हुं घादिविरहिदं च।।23।।

उहयविहूदिसंजुदो, केवलणाणदिवायरो जयेदु हु।
वसुपाडिहेरसहिदो, परमोरालिय-देहवंतो।।24।।

राय-बिंबसारेणं, पुच्छिदं दु सट्ठि-सहस्स-पण्हाणि।
सगकल्लाणणिमित्तं, विसुद्धीए उच्छाहेणं।।25।।

तब अपने आसन से खड़े होकर (जहाँ विपुलाचल पर भगवान् विराजमान थे) उसी दिशा में सात कदम जाकर विशुद्धि पूर्वक सम्यक् दंड नमस्कार किया।।19।। राजा की आज्ञा से नगर में घोषणा हुई कि कल महाराज श्रेणिक परिकर सहित भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन के लिए विपुलाचल पर्वत पर जाएँगे।।20।। सम्यग्दृष्टियों की वह रात्रि जिन दर्शन की आकुलता व आनंद के साथ व्यतीत हुई। प्रातःकाल राजपरिवार, मंत्री आदि सभी प्रजा दर्शन के लिए गई।।21।। वहाँ भगवान् की वंदना करके सभी लोग समवशरण में अपने-अपने कोठे में बैठ गए। मुख्य श्रोता राजा श्रेणिक भगवान् महावीर स्वामी की प्रदक्षिणा कर इस प्रकार स्तुति करते हैं।।22।। वीतरागी, सर्वज्ञ, घाति कर्मों से रहित श्री वर्द्धमान, अतिवीर, वीर, सन्मति, महावीर जिनेंद्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।23।। उभय (अंतरंग व बहिरंग) विभूति से संयुक्त, केवलज्ञान रूपी दिवाकर, आठ प्रातिहार्यों से सहित, परमौदारिक देह से युक्त प्रभु जयवंत होवें।।24।। राजा बिंबसार ने अपने कल्याण के निमित्त विशुद्धि व उत्साह से समवशण में साठ हजार प्रश्न पूछे थे।।25।।

वंदणं कडुअ णिवेण, तं णमिय पुण-पुण उत्तमंगेहिं।
दसमतित्थयर-सीयलणाहस्स चरियं पुच्छिदं दु।।26।

तिसिद-चायवोव्व णिवं, आयण्णिय पसंसिदं गणहरेण।
सीयलणाहचरियं हु, पावक्खय-कारणं कहिदं।।27।।

इंदभूदि-गोदम-गणहरेण पुण जहा वण्णिदं चरियं।
तहा हु सीयलणाहं, तित्थयरं परियंदिदूणं।।28।।

सुपुण्णवड्ढगं पाव-हारगं णिम्मलं सय सुह-हेदुं।
अण्णाण-तम-णासगं, दोसहारगं सुह-पवित्तं।।29।।

परंपराणुसारेण, सवरविसुद्धीए सत्तीए तं।
वसुणंदि-सूरी वदमि, भत्तीए गुरुपसादेणं।।30।।

स्वागता छंद

तित्थसीयलजिणिंदचरित्तं, पुण्णपावरहिदस्स सुणेदि।
सोक्खणंतमह पावदि जो सो, तं सुणंतु भविया सुरदीए।।31।।

उस समय राजा ने भगवान् की वंदना करके उन्हें उत्तमांगों से पुनः-पुनः नमस्कार करके दसवे तीर्थंकर श्री शीतलनाथ का चरित्र पूछा।।26।। चातक पक्षी के समान तृषित राजा के वचन सुनकर मुनिराज गणधर देव ने राजा की प्रशंसा की और कहा हे नृप! यह शीतलनाथ चरित्र निश्चय से पाप क्षय का कारण है।।27।।

उस समय श्री इंद्रभूति गौतम गणधर ने जिस प्रकार श्री शीतलनाथ प्रभु का चरित्र कहा था उसी प्रकार श्री शीतलनाथ तीर्थंकर प्रभु की स्तुति कर परंपरानुसार सुपुण्यवर्द्धक, पाप-हारक, निर्मल, सदा सुख का हेतु, अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला, दोषहारक, शुभ, पवित्र उस श्री शीतलनाथ चरित्र को स्वपर की विशुद्धि के लिए शक्ति व भक्ति से, गुरु कृपा से मैं आचार्य वसुनंदी कहता हूँ।।28-30।।

जो पुण्य व पाप दोनों से रहित तीर्थंकर श्री शीलतनाथ जिनेंद्र का चरित्र सुनता है वह अनंत सौख्य को प्राप्त करता है। अतः हे भव्यजनों! प्रीतिपूर्वक इस चरित्र को सुनो।।31।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में कथा पीठिका वर्णन करने वाला प्रथम सर्ग पूर्ण हुआ।

राजा पद्मगुल्म रानी के साथ वनक्रीड़ा करते हुए

विदिय-सग्गो

अणंतपदेसजुदणह-दव्वस्स अणंतमभागे लोओ।
जीवाइ-छद्दव्वजुदो, वट्टंतेहि सगसरूवेण॥32॥

असंखेज्जपदेसजुद-लोयायासे जीवो पोग्गलो य।
धम्माधम्मायासो, कालदव्वो अणाइणिहणो॥33॥

लोओ पुरिसायारो, अकिट्टिमो चउदहरज्जुत्तुंगो।
सस्सदो तह सव्वत्थ, दक्खिणुत्तरे सत्तरज्जू॥34॥

पुव्वपच्छिमे हेट्ठिम-भागे सत्तरज्जू मुणेदव्वो।
पुण कमेण हासंतो, एयरज्जू मज्झभागम्मि॥35॥

उड्ढे पुण वड्ढंतो, उड्ढमज्झे पंचरज्जू णेयो।
हासंतो इग रज्जू, लोयंते सया विण्णाणी॥36॥

तेदाली-अहिय-तिसय-घणरज्जू लोय-घणफलं णेयं।
अहलोए णिवसंते, णेरइया णिच्चणिगोदिया॥37॥

खरपंकब्बहुला तह, तिभागा होज्जा दु पढमणिरयस्स।
खरपंकभागेसुं दु, भवण-वाणविंतरा वसंति॥38॥

आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी है उसके अनंतवे भाग में लोक स्थित है। वह लोक अपने स्वरूप के अनुसार वर्तन करते हुए छह द्रव्यों से युक्त है॥32॥ असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल ये अनादिनिधन छः द्रव्य हैं॥33॥ लोक पुरुषाकार, अकृत्रिम, चौदह राजू ऊँचा, शाश्वत एवं उत्तर-दक्षिण में सर्वत्र सात राजू वाला है॥34॥ यह लोक पूर्व-पश्चिम में निचले भाग में सात राजू पुनः क्रम से घटता हुआ मध्यभाग में एक राजू प्रमाण वाला जानना चाहिए॥35॥ पुनः ऊर्ध्व में बढ़ता हुआ ऊर्ध्व के मध्यभाग में पाँच राजू पुनः घटता हुआ लोक के अंत में एक राजू प्रमाण वाला होता है ऐसा विशेष ज्ञानी सदा जानते हैं॥36॥ लोक का घनफल 343 घन राजू जानना चाहिए। अधोलोक में नारकी एवं नित्य निगोदिया जीव निवास करते हैं॥37॥ अधोलोक में प्रथम नरक के खर, पंक व अब्बहुल ये तीन भाग होते हैं। खर व पंक भाग में भवनवासी एवं व्यंतर देव भी निवास करते हैं॥38॥

उड्ढलोए णिवसंति, कप्पवासि-देव-देवि-अहमिंदा।
मज्झम्मि भवणत्तिया, तिरिया माणवा णियमेणं।।39।।

तिरिया माणुसा तस्स, असंखेज्जेसु दीव-समुद्देसु।
अड्ढाइज्जदीवेसु, आदिस्स मणुस्साण ठिदी हि।।40।।

पढमो जंबूदीवो, तत्तो अग्गे तह लवणसमुद्दो।
विदियो धादगिखंडो, तत्तो कालोदही जाणह।।41।।

पुणो तिदिय-पुक्करवर दीव-मज्झे वलयायारो णगो।
माणुसोत्तरो सिहरे, अकिट्टिम-जिणालय-जुत्तो य।।42।।

तस्स उत्तरभागम्मि, मणुस्स-संठिदी हु संभवो णेव।
तम्हा माणुसोत्तरो, णामसत्थगो हु पव्वयस्स।।43।।

पुक्करद्ध-दीवस्स दु, सस्सदसुरयणा धादगिखंडोव्व।
तस्स पुव्वद्धे मेरु-पाईणे विदेहखेत्तम्मि।।44।।

सीयाणदीइ दक्खिण-तडम्मि वच्छो देसो रमणीयो।
तस्स सुहरायहाणी, सेट्ठ-सीमाजुदा सुसीमा।।45।।

मज्जादा-पदायगा, रक्खगा विससक्किदिसक्काराण।
बहुला सपुण्णजीवा, पाविदिट्ठिगोयरा कयाइ।।46।।

ऊर्ध्वलोक में कल्पवासी देव, देवी व अहमिन्द्र निवास करते हैं तथा मध्य लोक में भवनत्रिक-भवनवासी, ज्योतिष व व्यतर देव, तिर्यंच तथा मानव निवास करते हैं।।39।। उसके अर्थात् मध्य लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों में तिर्यंच व मनुष्यों का निवास है। उसमें भी प्रारंभ के ढाई द्वीपों में ही मनुष्यों की स्थिति है।।40।। प्रथम द्वीप जंबूद्वीप है। उससे आगे लवण समुद्र होता है। उससे आगे द्वितीय धातकी खंड है तथा उससे आगे कालोदधि जानना चाहिए।।41।। पुनः तृतीय पुष्करवर द्वीप के मध्य वलयाकार शिखर पर अकृत्रिम जिनालयों से युक्त मानुषोत्तर पर्वत है।।42।। उसके उत्तर भाग में मनुष्य की संस्थिति संभव नहीं है इसीलिए मानुषोत्तर पर्वत का मानुषोत्तर नाम सार्थक है।।43।। पुष्करार्द्ध द्वीप की रचना धातकीखंड की रचना के समान शाश्वत है। उसके पूर्वार्द्ध में मेरु पर्वत की पूर्व दिशा संबंधी विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण तट पर वत्स नामक रमणीय देश है। उसकी शुभ राजधानी श्रेष्ठ सीमा से युक्त, मर्यादा प्रदायक, धर्म संस्कृति व संस्कारों की रक्षक, पुण्यवान् जीवों से युक्त एवं कदाचित् ही पापी जीवों से दृष्टिगोचर सुसीमा नगरी थी।।44-46।।

सस्सद-मोक्खमहीए, विज्जंता सुपुण्णज्जगा सया हि।
सगकत्तव्वं किच्चा, लहीअ सुहगदिं मुणिं हविय।।47।।

णयरे ठाणे ठाणे, विअसिद-पउमजुद-अणेगवाविगा।
कलहंसाइ-रव-जुदा, अइ-मणोहरा सुरमणीया।।48।।

पुप्फिद-पल्लविद-फलिद-अणेगरुक्ख-संजुद-बहु-अरण्णा।
पुप्फादिं समप्पिदुं, भयगा व्व रुक्खा मग्गेसुं।।49।।

थी मंगलायारं च, करंता केदुमालिगा फुरंता।
वड्ढीअ णयरि-सोहं, बालाणं सिट्ठ-रवा पुण पुण।।50।।

पुरिसट्ठजुत्तपुरिसा, विणदजुवा य सीलवंता णारी।
सक्कारजुत्तबाला, पेम्मववहारजुत्तसव्वा।।।51।।

बंधणं तह पसूसुं, करग्गहणं केवलं विवाहम्मि।
भीरुत्तं पापादो, वसणं तह परोवयारस्स।।52।।

दंडो इक्खुदंडेसु, विकोसत्तं पउमेसु णो जणेसु।
कुडिलत्तं मग्गेसु हि, पदणं फलफूलपत्तेसुं।।53।।

उस शाश्वत मोक्ष भूमि पर सदा ही शुभ पुण्य का अर्जन करने वाले जीव विद्यमान थे। वे स्वकर्त्तव्यों का पालन कर, मुनि होकर शुभ गति को प्राप्त करते थे।।47।। उस नगर में स्थान-स्थान पर खिले हुए कमलों से युक्त अनेक वापिकाएँ थीं। वे कलहंस आदि के शब्दों से युक्त, अतिमनोहर एवं सुरमणीय थीं।।48।। वहाँ पुष्पित, पल्लवित एवं फलित अनेक वृक्षों से युक्त बहुत से वन थे। मार्गों में वृक्ष पुष्पादि को समर्पित करने के लिए सेवकों के समान स्थित थे।।49।। मंगलाचार करती हुई स्त्रियाँ, फहराती हुई पताकाएँ एवं बालकों के शिष्ट शब्द उस नगरी की शोभा को वृद्धिंगत कर रहे थे।।50।। वहाँ पुरुष पुरुषार्थ से युक्त, युवा विनयी, नारियाँ शीलवान्, बच्चे संस्कारों से युक्त एवं सभी लोग प्रेम व्यवहार से युक्त थे।।51।। वहाँ बंधन मात्र पशुओं में ही था, वहाँ के मनुष्यों में बंधन-कारागार आदि का बंधन नहीं था। वहाँ कर ग्रहण अर्थात् पाणि ग्रहण विवाह में ही होता था और कर ग्रहण-टैक्स वसूल करना अथवा अपराध होने पर जंजीर आदि से हाथों का पकड़ा जाना नहीं होता था। वहाँ भीरुता मात्र पापों से ही थी। वहाँ व्यसन मात्र परोपकार का ही था।52।। वहाँ दंड मात्र इक्षुदंडों में ही था, वहाँ के मनुष्य दंड-सजा से रहित थे। वहाँ विकोशत्व अर्थात् खिल जाने पर कुङ्मलबौड़ी का अभाव मात्र कमलों में ही था, वहाँ के मनुष्यों में विकोशत्व अर्थात्, खजानों का अभाव नहीं होता था। वहाँ कुटिलता मार्गों मे ही थी, वहाँ के लोग कुटिल नहीं थे, पतन मात्र फल, फूल व पत्तों में ही था, लोग सदाचार से पतित नहीं होते थे।।53।।

पउमगुम्मो णिवो सो, तदा अलकापुरी व सुणयरीए।
तस्स दासीव पउमा, पउमं व सुंदरमाणणं च॥54॥

दिग्गयोव्व महोदयो, महोत्तुंगवंसो साहिमाणी य।
अज्जसंगदिसंजुदो, गदरायि-णिग्गंथ-भत्तो दु॥55॥

पउमं व णिल्लेवो दु, सरलो तह धम्मभावसंजुत्तो।
साम-दाम-दंड-भेय-णीदीण सुहणादू सूरो॥56॥

रिउमंडलजिण्हू सो, संधि-विग्गह-याणाइ-सडगुणेहि।
णायवंतुच्छाही य, पयावच्छलो सच्चवायी॥57॥

पुव्वपुण्णबीयेणं, तस्स रज्जरुक्खो विअसिदो सुट्ठु।
सुक्किद-णीरेण तम्मि, उत्तमभोयपुप्फाणि तदा॥58॥

दाणेण वच्छलेणं, मेहोव्व पयातुट्ठिकारगो सो।
पुण्णफलभोत्तू सया, धम्माइ-तियपुरिसट्ठेहिं॥59॥

पुण पुण पस्सीअ णिवं, सुकिदादु चदुत्थमोक्खपुरिसट्ठो।
आगमिदुं बहुइच्छुग-वुड्ढत्तं व पोढणियडम्मि॥60॥

उस समय अलकापुरी के समान उस नगरी का राजा पद्मगुल्म था। पद्मा अर्थात् लक्ष्मी 'उसकी दासी के समान थी एवं सुंदर मुख पद्म अर्थात् कमल के समान था॥54॥ वह राजा दिग्गज के समान था जिस प्रकार दिग्गज महान हृदय से सहित होता है उसी प्रकार राजा भी महान् उदय अर्थात् वैभव से सहित था, जिस प्रकार दिग्गज ऊँचेवंश अर्थात् पीठ की रीढ़ का धारक होता है उसी प्रकार राजा महोत्तुंग वंश अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कुल का धारक था। वह राजा स्वाभिमानी, आर्यों की संगति से युक्त एवं वीतरागी प्रभु व निर्ग्रन्थ गुरुओं का भक्त था॥55॥ वह राजा कमल के समान निर्लेप, सरल, धर्म-भाव से युक्त, साम, दाम, दंड व भेद नीतियों का शुभज्ञाता व शूर था॥56॥ वह संधि, विग्रह, यानादि (आसन, संश्रय व द्वैधीभाव) षट्गुणों से शत्रुमंडल को जीतने वाला था। वह न्यायवान्, उत्साही, प्रजावत्सल व सत्यवादी था॥57॥ पूर्व पुण्य के बीज से उस राजा का राज्य रूपी वृक्ष श्रेष्ठ प्रकार से विकसित हो रहा था। सुकृत अर्थात् पुण्य वा श्रेष्ठ कार्य रूपी नीर से उस पर उत्तम भोग रूपी पुष्प आ रहे थे॥58॥ वह राजा मेघ के समान दान व वात्सल्य से प्रजा को संतुष्ट करने वाला था अर्थात् जिस प्रकार पानी बरसा कर मेघ भूमि व भूमिवासियों को तृप्त करते हैं उसी प्रकार वह राजा दान व वात्सल्य की वर्षा से प्रजा को संतुष्ट करता था। वह धर्मादि (धर्म, अर्थ, काम) तीन पुरुषार्थों के द्वारा सदा पुण्य के फल को भोगने वाला था॥59॥ जिस प्रकार वृद्धत्व प्रौढ़ के निकट आने के लिए बहुत अभिलाषी होता है उसी प्रकार राजा के सुकृत्यों-पुण्य कार्यों के कारण चतुर्थ मोक्ष पुरुषार्थ राजा को पुनः पुनः देखता था॥60॥

पुरक्कारे सुकोमल-णव-कलिगा-लहिद-मकरंदं व तह।
सगसुकज्जाणं पया, गहीअ णिवेण पुरक्कारं।।61।।

विदूणं कहासुं सो, देसो सग्गोव्व सुपुण्णफलेणं।
इंदोव्व पूयिदो सग-पयाए राय-पउमगुम्मो।।62।।

रायो बहुप्पसिद्धो, विअणिय-जसजुदो वि अण्णदेसेसु।
सव्वण्हु-केवलिस्स दु, भामंडलोव्व णिम्मलेणं।।63।।

जह जह चंदकला चिय, वड्ढेदि तह तह समुद्द-णीरं वि।
तहेव सुरायाउणा, सह सिरि-कित्ति-बुद्धिच्चादी।।64।।

रयणायरोव्व मज्जादिद-गंभीरो गुणरयणसंजुदो।
लवणजुत्तजलं तस्स, महुरिमा रायपइडी णवरि।।65।।

डिंडीरेण पावरिय-सुधवलणिम्मलणीरं सायरस्स।
णवरि रायजसो णेव, पावयो केण वि कारणेण।।66।।

जिस प्रकार कोमल नव कलिकाएँ माना पुरस्कार में पराग को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार अपने अच्छे कार्यों के लिए प्रजा राजा से पुरस्कार ग्रहण करती थी।।61।। वह देश विद्वानों की कथाओं में स्वर्ग के समान कहा जाता था। अपने पुण्य के फल से वह राजा पद्मगुल्म अपनी प्रजा के द्वारा इंद्र के समान पूजित था।।62।। वह राजा बहुत प्रसिद्ध, अन्य देशों में भी सर्वज्ञ केवली प्रभु के आभामंडल के समान निर्मल विस्तृत यश से युक्त था।63।। जैसे-जैसे चंद्रमा की कला वृद्धिंगत होती है वैसे-वैसे समुद्र का जल भी वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार जैसे-जैसे राजा की आयु वृद्धिंगत हो रही थी उसकी श्री (लक्ष्मी), कीर्ति, बुद्धि इत्यादि भी वृद्धि को प्राप्त हो रही थी।।64।। वह राजा रत्नाकर के समान था। जिस प्रकार समुद्र मर्यादित व गहरा होता है उसी प्रकार राजा भी मर्यादित व गंभीर था। जिस प्रकार समुद्र में रत्न होते हैं उसी प्रकार वह भी गुण रूपी रत्नों से युक्त था किन्तु विशेषता यह है कि समुद्र का जल खारा होता है किन्तु राजा की प्रकृति मधुर थी।।65।। समुद्र का सुध वल निर्मल नीर तो फेन या झाग से ढक जाता है किन्तु विशेषता यह है कि राजा का यश किसी भी कारण से आच्छादित नहीं होता था।66।।

पडिप्फद्धा णो तत्थ, इत्थि-ववसायि-कलायारेसुं च।
पडिप्फद्धं करीअ हु, रायाणणादो मिअंगो य॥67॥

सुणयणादो पुप्फाणि, कलयंठी कंठादु गयो गदीइ।
परक्कमादो सीहो, विणयादो फलजुत्तरुक्खो॥68॥

संखेवेण बहुगुणी, णिवो बाहत्तरि-सुहकला-जुत्तो।
सम्मवरोव्व पयाए, सव्वजणाणंदकारगो य॥69॥

सिंधुस्स वरवीईव, जिणच्चणादि-पुण्ण-वीई राये।
सुपत्तदाणरदो सय, पुण्णमज्जेदुं जागरिओ॥70॥

जाणिज्जदि णो केण वि, सुपुण्णगदीव चिय वदीदयालं।
पुण्णोदये वि तम्हा, राया-पयाइ-सव्वेहि णो॥71॥

तस्स सहधम्मिणी तह, अद्धंगिणि-वंसवड्ढगा राणी।
लावण्णसंजुदा अइरूववंता मणोहरा तह॥72॥

सा तस्स सहजोगी वि, सम्मेणं सुरज्जसंचालणम्मि।
सुमंगल्लकज्जेसु य, धम्माइसव्वसुहकज्जेसु॥73॥

उस समय वहाँ प्रतिस्पर्द्धा नारियों, व्यवसायियों या कलाकारों में नहीं थी अपितु चंद्रमा राजा के मुख से, पुष्प राजा के नेत्रों से, कोयल राजा के कंठ से, गज राजा की गति वा चाल से, सिंह राजा के पराक्रम से एवं फलयुक्त वृक्ष राजा की विनय से प्रतिस्पर्द्धा करते थे। 67-68॥ संक्षेप से वह राजा बहुत गुणी, बहत्तर शुभ कलाओं से युक्त, प्रजा के लिए सम्यक् वरदान के समान और सभी लोगों के लिए आनंद उत्पन्न करने वाला था।69॥ सागर में उठने वाली लहरों के समान राजा में जिनार्चनादि पुण्य लहरें उठ रही थीं। वह राजा सुपात्रदान में रत व पुण्यार्जन के लिए जागरूक था॥70॥ पुण्य के उदय में गरुड़ की गति के समान व्यतीत काल किसी के द्वारा भी नहीं जाना जाता। उसी प्रकार राजा-प्रजा आदि सभी व्यतीत काल को नहीं जान रहे थे॥71॥ उन राजा पद्मगुल्म की सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी, वंश का वर्द्धन करने वाली रानी लावण्य से युक्त, अति रूपवान् व चित्तहारिणी थी॥72॥ वह उस राजा की सम्यक् प्रकार से श्रेष्ठ राज्य संचालन, शुभ मंगल कार्य तथा धर्मादि सर्व शुभ कार्यों में सहयोगी थी॥73॥

भूमीव सहिण्हू सा, खमाजुत्ता य बहुसुहगुणपुंजा।
धीरा समादुत्तं च, पोसगा सुहुप्पायगा तह।।74।।

वसंतवसरे राओ, एयदा गदो परिवारेणं सह।
उववणं च आणंदिद - हवंतो वसंतकिड्डाए।।75।।

तित्थजम्मकल्लाणे, सिन्नजुदागच्छंतसोहम्मोव्व।
सोहीअ वसंतो अत्थाणं महीए सागदस्स।।76।।

पइडीए सुंदरिमा, हिय-विगासगा पत्तेयजीवस्स।
जह तह अक्कोदयेण, पइडी णंददि पप्फुल्लेदि।।77।।

कत्थ वि रम्म-पीदाणि, हरिद-रत्ताणि विअसिद-पुप्फाणि।
कत्थ वि केसरिल्लाणि, कत्थ वि धवलाणि णीलाइं।।78।।

वसंते बहुवण्णजुद-साडिगाइ पावरियित्थीव मही।
फुरिअ-धण्ण-रुक्खादी, ताइ सुंदर-लंब-केसोव्व।।79।।

विहिण्णवण्णपुप्फाणि, पडिप्फद्धं करेज्ज सक्कधणूदु।
विहसंत-सुमजुदमही, मंद-णच्चंत-गागेज्जा व।।80।।

वह रानी भूमि के समान सहिष्णु, क्षमा से युक्त, बहुत शुभ गुणों के पुंज रूप, धीर, मातृत्व भाव से सहित, पोषक एवं सुख का उत्पादन करने वाली थी।।74।। एक समय बसंत ऋतु के अवसर पर राजा सपरिवार सहित आनंदित होता हुआ बसंत क्रीड़ा के लिए उपवन में गया।।75।। भूमि पर पदार्थों (पुष्प, धान्यादि) के स्वागत के लिए वह बसंत ऋतु इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार तीर्थंकर के जन्म कल्याणक पर सेना सहित आता हुआ सौधर्मेन्द्र सुशोभित होता है।।76।। प्रकृति का सौंदर्य प्रत्येक जीव के हृदय का उसी प्रकार विकास करने वाला था जिस प्रकार सूर्य के उदय से प्रकृति आनंदित व प्रफुल्लित होती है।।77।। कहीं पर रम्य पीले, कहीं पर हरे, लाल, कहीं पर केसरिया व कहीं पर धवल व नीले पुष्प खिले हुए थे।।78।। बसंत ऋतु में पृथ्वी ऐसी लग रही थी मानो बहुत रंगों से युक्त साड़ी से आच्छादित स्त्री ही हो। लहराते हुए धान्य, वृक्ष आदि उसके सुंदर-लंबे केशों के समान प्रतीत हो रहे थे।।79।। विविध रंगों के पुष्प इन्द्रधनुष से ही मानो प्रतिस्पर्द्धा कर रहे थे। खिले हुए पुष्पों से युक्त भूमि धीमे-धीमे नृत्य करती हुई दुल्हन के समान प्रतीत हो रही थी।।80।।

णच्चिदुं अइआउरा, भासीअ तह वाएरिआ पइडी।
तित्थजम्मकल्लाणे, जह णच्चंगणा णच्चंते॥81॥

इंदु-विड्ढीइ सोहा, भादुणा सहिद-बहिणीइ केलीव।
वसंताणंदं परा, णो थक्कीअ पस्संता तं॥83॥

णियराणिसहिदराओ, अजाणंतो यालं गच्छमाणं।
तदा वसंतकेलीइ, लीणो उक्किट्ठभोयेसुं॥84॥

तत्थ रंजंत-णिवस्स, चित्ते ण विअप्पो अण्णकज्जाण।
जह तह रत्तीए णो, हवेदि दिवायरस्स उदओ॥85॥

सहसत्ति सघणमेहा, विणस्सेज्जा दु पवणाघादेणं।
पइडि-सुंदरिमणुवमा, तदा रायाणंदो वि तेण॥86॥

राय-पउमगुम्मो णो, समत्थो तं ठादुं सुइरंतं च।
जह चक्की ण णवणिहिं, रयणाणि देदुं सपुत्तस्स॥87

जिस प्रकार तीर्थंकर के जन्म कल्याणक पर नृत्यांगना नृत्य करती हैं उसी प्रकार पवन के संयोग से कंपित प्रकृति नृत्य के लिए अति आतुर प्रतिभासित हो रही थी॥81॥ दिन में खिलते हुए व रात्रि में मुरझाते हुए पुष्प ऐसे लग रहे थे मानो कोई नवविवाहिता बार-बार अपना घूंघट ही संभाल रही हो॥82॥ बढ़ते हुए चंद्रमा की शोभा ऐसी लग रही थी मानो भाई-बहन की क्रीड़ा ही हो। उस समय उस बसंत के आनंद को देखते हुए मनुष्य थक नहीं रहे थे॥83॥ बसंत क्रीड़ा के समय अपनी रानी के साथ राजा जाते हुए समय को नहीं जानते हुए उस समय उत्कृष्ट भोगों में लीन था॥84॥ वहाँ रंजायमान होते हुए राजा के चित्त में अन्य कार्यों का विकल्प वैसे ही नहीं था जैसे रात्रि में सूर्य का उदय नहीं होता॥85॥ तभी अचानक पवन के आघात से सघन मेघ नष्ट हो गए, तब प्रकृति का अनुपम सौंदर्य भी नष्ट हो गया तथा उससे राजा का आनंद भी नष्ट हो गया॥86॥ राजा पद्मगुल्म उसे लंबे समय तक ठहराने में उसी प्रकार समर्थ नहीं था जिस प्रकार चक्रवर्ती अपने पुत्र को नवनिधि व चौदह रत्न देने में समर्थ नहीं होता॥87॥

पृथ्वी छंद

वसंतसमये पियाइ सह कामदेवोव्व सो,
रदो दु विसये सुहेण णिवपम्हगुम्मो तदा।
गुरू जिणवरा सुदं पडि समप्पिदो सासगो,
पया-हिदयरो जुदो बहुगुणेहि णिद्दूसणो॥88॥

वसंत ऋतु के समय कामदेव के समान वह राजा पद्मगुल्म अपनी प्रिया के साथ सुखपूर्वक विषयों में रत था। यद्यपि वह राजा देव-शास्त्र-गुरु के प्रति समर्पित, प्रजा का हितकारी, निर्दोष और बहुत गुणों से युक्त था॥88॥

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में राजा पद्मगुल्म के अभ्युदय का वर्णन करने वाला द्वितीय सर्ग पूर्ण हुआ।

राजा पद्मगुल्म द्वारा बसंत शोभा को नष्ट होते देखकर वैराग्योत्पत्ति

तिदिय-सग्गो

पइडिसोहाइ णट्ठे, णिवेण चिंतिदं खणिय-संसारं।
भवसरीरभोयादो, विरज्जिय पुव्वसक्कारेहि॥89॥

तदा वेरग्ग - चिंतग - धम्मभावजुदप्पहिदतप्परेण।
रायेणं विआरिदं, णस्सराणिच्चत्तं इत्थं॥90॥

सगपुण्णपावफलाणि, पत्तेयं जीवो भवे भुंजेदि।
पुण्णे विणट्ठे पुण्ण-फलं पाविदुं समत्थो को॥91॥

पावणट्ठेणं विणा, पावफलाणि कहं खवेज्ज जीवो।
कारणं विणा कज्जं, ण कत्थ वि संभवो तिलोए॥92॥

कम्मवसेण परिभमदि, दुक्खपूरिद-णिस्सार-संसारे।
इह संसारे कया वि, किंचिवि सुहं संभवो णेव॥93॥

जीवो अणंतवारं, जम्मीअ मरीअ य अस्स लोयस्स।
पत्तेयं पदेसे ण, सुहं इह भवे कम्मजुदस्स॥94॥

प्रकृति की शोभा नष्ट होने पर पूर्व संस्कारों के वश संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर राजा क्षणिक संसार का चिंतन करने लगा॥89॥ उस समय वैराग्य का चिंतन करने वाले, धर्म भाव से युक्त, आत्म हित में तत्पर राजा ने नश्वरता व अनित्यत्व का इस प्रकार विचार किया॥90॥ संसार में प्रत्येक जीव अपने पुण्य व पाप के फलों को भोगता है। पुण्य के नष्ट होने पर पुण्य का फल प्राप्त करने में कौन समर्थ होता है? अर्थात् कोई नहीं॥91॥ पाप को नष्ट किए बिना जीव किस प्रकार पाप के फलों को नष्ट कर सकता है। कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति तीन लोक में कहीं भी संभव नहीं है॥92॥ कर्म के वशीभूत हो जीव दु:खपूरित नि:सार संसार में परिभ्रमण करता है। इस संसार में कदापि भी किंचित भी सुख संभव नहीं है॥93॥ इस लोक के प्रत्येक प्रदेश पर जीव ने अनंत बार जन्म लिया व अनंत बार मृत्यु को प्राप्त किया। कर्म युक्त जीव के लिए इस संसार में सुख नहीं है॥94॥ जिस प्रकार अग्नि में शीतलता संभव नहीं है, असंयमियों के मन:पर्ययज्ञान संभव नहीं है उसी प्रकार गृहस्थों के कदापि भी शुद्धात्मानुभव संभव नहीं है॥95॥

अणले सीयलत्तं व, असंजमीणं मणमज्जयं व तह।
गिहत्थाण संभवो ण, कया वि दु सुद्धप्पाणुभवो॥95॥

रागीहि केवलणाण-दंसण-सिवत्ताण लहणमसक्को।
संसारी सय कुणंति, पंचपरावट्टणं दुहेण॥96॥

अणादीदो कम्मेहि, परतंतं होच्चा जम्मं मरणं॥
करिदं मए जाणामि, अहुणा कम्मं ण सुहदेदू॥97॥

असादुदयेण लहिदा, दुहसामग्गी मइ अणंतवारं।
सादुदयेण होदि दुह-हाणी णेव जहत्थसोक्खं॥98॥

सादुदयेणं दुहदा, पत्तपयत्था सया सुहाभासो।
कम्मुदयेण पत्त-सुह-मंतजुदं अहबंध-हेदू॥99॥

पारतंतम्मि सोक्खं, अणुभवेदुं समत्थो को जीवो।
पारतंतं हि दुक्खं, तं कहं होज्ज सोक्ख-हेदू॥100॥

मोहविणट्ठेण विणा, को समत्थो पाविदुमणंतसुहं।
सस्सद-मप्पुप्पण्णं, सहाविगं सुद्धावत्थाइ॥101॥

रागी जीवों के केवलज्ञान, केवल दर्शन व शिवत्व का प्राप्त करना शक्य नहीं है। संसारी जीव दु:ख से सदा पंचपरावर्तन करते हैं॥96॥ मैंने अनादिकाल से कर्मों से परतंत्र होकर जन्म व मरण किया है। अब मैं जान गया हूँ कि कर्म सुख का हेतु नहीं है॥97॥ असाता वेदनीय कर्म के उदय से मैंने अनंत बार दु:ख देने वाली सामग्रियों को प्राप्त किया। साता वेदनीय के उदय से मात्र दु:ख की हानि होती है, यथार्थ सुख नहीं होता। **विशेषार्थ**–सुख कर्म से उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह जीव का स्वभाव है और इसलिए वह कर्म का फल नहीं है। सुख को जीव का स्वभाव मानने पर सातावेदनीय कर्म का अभाव भी प्राप्त नहीं हो पाएगा, जो हो नहीं सकता। तब बताते हैं कि दु:ख उपशमन के कारणभूत सुद्रव्यों के सम्पादन में सातावेदनीय कर्म का व्यापार होता है। दु:ख के उपशम से उत्पन्न हुए, दु:ख के अविनाभावी उपचार को ही सुख संज्ञा प्राप्त है। अत: सातावेदनीय के उदय से दु:ख हानि को सुख कहते हैं, किन्तु यह स्वभावजनित यथार्थ सुख नहीं है॥98॥ साता के उदय से प्राप्त दुखद पदार्थ सदा सुखाभास ही हैं। कर्म के उदय से प्राप्त सुख अंत से युक्त और पाप बंध का कारण होता है॥99॥ परतंत्रता में सुख का अनुभव करने में कौन समर्थ होता है? परतंत्रता ही दु:ख है, वह सुख का कारण कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती॥100॥ मोह का नाश किए बिना कौन शाश्वत, आत्मोत्पन्न, स्वाभाविक, शुद्धावस्था रूप अनंत सुख को पाने में समर्थ हो सकता है? कोई नहीं॥101॥

जो को वि देहं लहिय, पारतंतो इह दुहदसंसारे।
सो सुवदि मिच्चु-अंके, णेव हु तस्स रक्खगो को वि॥102॥

आउक्खये खयं ते, ओराल-वेगुव्वियाहारगाणि।
सव्वाणंतदेहाणि, होंति अणिच्चाणि संसारे॥103॥

अणादीदो कम्माण-तेजस-सरीराणि होंति सव्वाण।
ताणं णासेण विणा, को चिय होदि देहादीदो॥104॥

णस्सर-ओरालियाइ-देहा मुणिदा मइ सगमज्जंतं।
मेरुव्व अविणस्सरा, अहो! मूढ-सिरोमणी अहं॥105॥

अविणस्सरं सगप्पं, णादुं ण सक्कीअ हं अज्जंतं।
पुण पुण लहीअ देहं, भुंजिदु-मुवज्जिदकम्मफलं॥106॥

देहो ण मे सहावो, कारागारोव्व भासदे अहुणा।
अस्स विणास-पुव्वम्मि, सकल्लाणं कुणमु जदणेण॥107॥

जहवि संसार-हेदू, कम्मज्जिदुं मुक्खहेदू देहो।
तहवि सिवहेदू ताण, जे होज्ज तादो विरत्ता वि॥108॥

मणवयणकाया जे हु, णिरुंभेदुं समत्था भव्वुल्ला।
ताणं संजमीणं वि, कम्मक्खय-कारणं देहा॥109॥

जो कोई भी शरीर को प्राप्त कर इस दु:खद संसार में पराधीन है वह निश्चय से मृत्यु की गोद में सोता है, उसका इस संसार में कोई रक्षक नहीं है॥102॥ आयु के क्षय होने पर औदारिक, वैक्रियक व आहारक शरीर नष्ट हो जाते हैं। संसार में समस्त देह अनित्य होती हैं॥103॥ अनादिकाल से कार्माण व तैजस शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं। उनके नाश के बिना कौन देहातीत होता है? अर्थात् कोई नहीं॥104॥ आज तक मैंने नश्वर औदारिकादि देहों को अपना माना, उन्हें मेरु पर्वत के समान अविनश्वर माना। अहो! मैं मूर्ख शिरोमणि हूँ॥105॥ मैं आज तक अविनश्वर स्वात्मा को जानने में समर्थ नहीं हुआ। उपार्जित कर्म के फलों को भोगने के लिए पुन:-पुन: देह प्राप्त की॥106॥ यह शरीर मेरा स्वभाव नहीं है। अब यह मुझे कारागृह की तरह प्रतिभासित होता है। इसके विनाश के पूर्व मुझे यत्नपूर्वक स्वकल्याण करना चाहिए॥107॥ यद्यपि शरीर संसार का कारण है एवं कर्म अर्जन का भी मुख्य हेतु है तथापि जो इससे विरक्त हो जाते हैं उनके लिए मोक्ष का हेतु भी है॥108॥ जो भव्य जीव मन-वचन-काय का निरोध करने में समर्थ है उन संयमियों की देह कर्म क्षय का कारण है॥109॥

ते भव्वा सण्णाणी, अच्चंतपुण्णवंता पुरिसा जे।
णरभवं लहिय कुणंति उहयतवं कम्मक्खयेदुं॥110॥

णरदेहस्स सारो ण, पोसण-मलंकरण-मणुयरण-मस्स।
रयणत्तयं लहित्ता, सुतवज्झाणाणं करणं हि॥111॥

गब्भादो मरणंतं, देहो हवेदि कम्मज्जण-हेदू।
देहजदुहाण हेदू, देहो तं खयेज्ज जदणेण॥112॥

अइ-अपवित्तदेहस्स, जोगेण पूदत्था वि अपवित्ता।
होज्ज वि सुहजलमसुहं, मलजुदघडसंसग्गेण जह॥113॥

पणिंदिय-विसय-सव्वा, भुयंगोव्व भासेज्ज णाणिजणा दु।
एगवारं डंसदि तु, सप्पो विसयाणंतवारं॥114॥

भोया दिस्संति सया, महुरा रमणीया सुंदरा किण्णु।
विवागसमये दुहदा, होंति णियमेणं विसफलं व॥115॥

जणा मण्णंति ते सय, भुंजंते भोया इंदिय-विसया।
जहत्थम्मि णेव वरं, भोया देहस्स चिय सत्तिं॥116॥

भोयो रोयकारणं, णिबिड-पापकम्मबंधणिमित्तं हु।
दुहाण जणगो णिच्चं, धम्मज्झाण-विणासगो तह॥117॥

वे भव्य पुरुष सम्यग्ज्ञानी व अत्यंत पुण्यवान् हैं जो नर भव को प्राप्त कर कर्मक्षय के लिए बहिरंग व अंतरंग उभयविध तप करते हैं॥110॥ नर देह का सार उस देह का पोषण, अलंकरण (सजाना) या सेवादि नहीं है अपितु रत्नत्रय को प्राप्त कर सम्यक् तप व ध्यान करना ही है॥111॥ गर्भ से लेकर मरण तक देह कर्मोपार्जन का कारण होती है। देह, देह से उत्पन्न दु:खों का कारण है अत: पुरुषार्थ से उसे सदा के लिए नष्ट करना चाहिए॥112॥ जैसे मल से भरे घड़े के संसर्ग से शुभ या पवित्र जल भी अशुभ व अपवित्र हो जाता है, वैसे ही अति अपवित्र देह के संयोग से पवित्र पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं॥113॥ ज्ञानीजनों को पंचेंद्रिय के सभी विषय सर्प के समान प्रतिभासित होते हैं। सर्प तो जीव को एक बार डंसता है किन्तु विषय अनंतबार डंसते हैं॥114॥ भोग सदा ही मधुर, रमणीय व सुंदर दिखाई देते हैं किन्तु वे विपाक के समय नियम से विष फल के समान दु:ख देने वाले होते हैं॥115॥ लोग मानते हैं कि वे सदा भोग व इंद्रिय विषयों को भोगते हैं परंतु यथार्थ में वे भोग को नहीं भोगते अपितु भोग ही देह की शक्ति को भोगते हैं॥116॥ भोग रोग का कारण हैं वह निविड पाप कर्मों के बंध का निमित्त हैं, वह भोग नित्य दु:खों का जनक तथा धर्म ध्यान का विनाशक है॥117॥

जह विसपुप्फसेज्जाइ, सयंतो पुरिसो दु सुहकंखाए।
विसगंधेण मरदि तह, भोया भुंजंतो मोहेण॥118॥

देहसुहं कंखंते, कइवयजणा दु विज्जुदुवयरणेहिं।
सणिअं सणिअं हरंति, देहसत्तिं पाणं ताणि तु॥119॥

णरभक्खिपादवं जह, गुम्मिय हरिज्जेदि आलिंगिय तं।
तेण पाणं अण्णाण-वसेण तह भोयेहि णराण॥120॥

फासिंदिय-विसयरदो, गयो मोहे किट्टिमहत्थिणीए।
पडदि महागत्ते पुण, बंधिज्जेदि आधोरणेण॥121॥

किलिकिंचंतो मीणो, अगाधणीरम्मि रसासत्तीए।
छिंदिय सतालुं मरदि, कंडगजुदपिट्ठं खादित्तु॥122॥

गंधासत्तो भमरो, णिराउलचित्तेण वसदे पउमे।
मत्तंडत्थयालम्मि, पउमे संकुइदे मरदि सो॥123॥

जहवि पुप्फं छिंदित्तु, भमरो तादो णिस्सरिदुं सक्को।
वरं ण छिंददि पुप्फं, गंधासत्तीइ मरदि तम्हि॥124॥

चक्खु-इंदिय-विसयम्मि, दीवपयासासत्तो जह सलहो।
पडदि दीवे सपाणं, देदि तह विसयासत्तणरो॥125॥

जैसे सुख की आकांक्षा से विष पुष्पों की शैय्या पर सोता हुआ मनुष्य विष गंध से मृत्यु को प्राप्त होता है वैसे ही मोह से भोगों को भोगता हुआ मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है॥118॥ कई लोग विद्युत् उपकरणों से देह सुख की आकांक्षा करते हैं किन्तु वे विद्युत् उपकरण शनैःशनैः देह की शक्ति नष्ट कर पुनः प्राणों का हरण कर लेते हैं॥119॥ अज्ञानवश नरभक्षी पादप की ओर मुग्ध होकर उसका आलिंगन करने पर उसके प्राण उस पादप के द्वारा हर लिए जाते हैं उसी प्रकार भोगों के द्वारा मनुष्यों के प्राण हर लिए जाते हैं॥120॥ स्पर्शेन्द्रिय के विषय में रत हाथी कृत्रिम हथिनी के मोह में महागर्त्त में जा पड़ता है। पुनः महावत के द्वारा बांध लिया जाता है॥121॥ अगाध जल में क्रीड़ा करती हुई मछली रसासक्ति से कंटक युक्त आटे को खाकर अपने तालु को छेद मरण को प्राप्त करती है॥122॥ गंध में आसक्त भ्रमर निराकुल चित्त से कमल में निवास करता है। सूर्यास्त के समय कमल के संकुचित होने पर वह मरण को प्राप्त हो जाता है॥123॥ यद्यपि वह भ्रमर पुष्प को छेदकर उससे बाहर निकलने में समर्थ होता है किन्तु वह गंध की आसक्ति से पुष्प को नहीं छेदता और उसमें मृत्यु को प्राप्त करता है॥124॥ चक्षु इंद्रिय के विषय दीप के प्रकाश में आसक्त वह शलभ जैसे ही दीपक में गिरता है, अपने प्राणों को दे देता है उसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य भी विषयों में आसक्त हो अपने प्राणों को त्याग देता है॥125॥

सत्तसुराणं सुणणे, आसत्तो भुयंगो मिगो अहवा।
लहेज्ज बंधणं तहा, संकिलेसं अणंतदुहाणि।।126।।

इगिगिंदिय-विसयेसुं, आसत्तो पावदि अणंतदुहाणि।
पंचिंदिय-विसयेसुं, आसत्त-जणस्स हु कहा का।।127।।

इत्थं पणक्ख-विसया, बज्झे दिस्संति अइ-मणोहरा दु।
वरं किंपाकफलं व, वा विसपुप्फं व घादगा दु।।128।।

भोया भुंजंत-णरो, विअक्कदि लहदे वरं बहुसोक्खं।
बहुदुक्खं णियमेणं, साणेणं अत्थिभक्खणं व।।129।।

एवंविह विअक्किदूण, अहविरत्तो हु भवतणभोयादो।।
राओ पउमगुम्मो दु, तप्परो वड्ढिदुं सिवपहे।।130।।

रायमहलं आगमिय, घोसीअ इत्थं रज्जसहाए दु।
अहं णिग्गंथदिक्खं, गहिदुं च अरण्णं गच्छामि।।131।।

णिग्गंथदिक्खं विणा, अप्पकल्लाणं संभवो णेव।
जदि इच्छदि सव्वदुक्ख-परिमोक्खं तो खलु गहेज्जा।।132।।

इच्छाणिरोहगं तह, भवविणासग-मप्पगुणदायगं च।
जहाजाद-दियंबरं, दिक्खं हु णिम्मलभावेहिं।।133।।

सात स्वरों के सुनने में आसक्त सर्प या हरिण बंधन, संक्लेशता व अनंत दु:खों को प्राप्त करता है।।126।। जब एक-एक इंद्रिय के विषयों में आसक्त प्राणी अनंत दु:खों को प्राप्त करता है तब पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त व्यक्ति की क्या कथा?।।127।। इस प्रकार पंच इंद्रियों के विषय अति मनोहर दिखाई देते हैं किन्तु वे किंपाक फल अथवा विषफल के समान घातक होते हैं।।128।। भोगों को भोगता हुआ मनुष्य विचार करता है कि वह बहुत सुखों को प्राप्त कर रहा है किन्तु वह नियम से दु:ख प्राप्त करता है जैसे हड्डी चबाता हुआ श्वान अपने जबड़े से निकलते हुए रक्त का स्वाद यह समझकर लेता है कि वह हड्डी से निकला रस है।।129।। इस प्रकार विचारकर संसार-शरीर-भोगों से अति विरक्त राजा पद्मगुल्म मोक्ष मार्ग पर बढ़ने के लिए तत्पर हुआ।130।। पुन: राजमहल में आकर राजसभा में इस प्रकार घोषणा की कि मैं आत्म हित के लिए निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करने के लिए वन को जाता हूँ।।131।। निर्ग्रन्थ दीक्षा के बिना आत्म-कल्याण संभव नहीं है। यदि सर्व दु:खों से मुक्ति चाहते हो तो निर्मल भावों से इच्छानिरोधिनी, भव विनाशक, आत्मगुणदायिका यथाजात दिगंबर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।।132-133।।

सुणिच्चा रायवयणं, सचिवो पहाणमंती पुरोघा य।
दंडणायगो सेणावइ-रज्जभयगा पयाजणा।।134।।
महिसि-पुत्तादी राय-परिवारो णिवेदेज्ज हे राओ!।।
तए विणा रज्जमिदं, सुण्णं व अणाहोव्व वयं च।।135।।
राणी वदीअ सामी! पुत्ते रज्जसंचालणजोग्गे य।
कालंतरे गहिहिमो, दिक्खं अम्हे सगहिदत्थं।136।।
बोहावंत-रायेण, भासिदं जीवणमिदं बुब्बुओव्व।
णेव विस्सस्सणीया, अस्स ठिदी कया वि णाणीहि।।137।।
सव्वं जाणंतो जो, णो कुव्वदि अप्पहिदं रागी सो।
मोक्खमग्गे वड्ढेदि, विलंबेणं विणा विरागी।।138।।
धम्म-मायरेज्ज तुज्झ, सगकत्तव्वं पालेज्ज णिट्ठाइ।
सवरहिदस्स पवित्तिं, करेज्ज सुहिजीवणस्स सया।।139।।
सगसुपुत्त-चंदणस्स, रज्जभारं दच्चा वणं गमिदुं।
अप्पकल्लाणत्थं दु, तप्परो परमविसोहीए।।140।।

चौपाई छंद

जयदु देह-भव-भोय-विरत्तो, कल्लाणाय सधम्मणुरत्तो।
जिणदिक्खापरिणामी धण्णो, वीयरायपहगामी धण्णो।।141।।

राजा के इस प्रकार वचन सुनकर सचिव, प्रधानमंत्री, पुरोहित, दंडनायक, सेनापति, राज्य कर्मचारी, सर्व प्रजाजन, महारानी, पुत्रादि समस्त राज परिवार ने निवेदन किया हे राजन्! आपके बिना यह राज्य शून्यवत् एवं हम सभी अनाथवत् हो जाएँगे।।134-135।। पुनः रानी ने कहा हे स्वामी! पुत्र के राज्य संचालन योग्य होने पर हम स्वहित के लिए कालांतर में दीक्षा ग्रहण करेंगे।।136।। तब राजा ने उन्हें समझाते हुए कहा–देखो यह जीवन जल के बुलबुले के समान है। ज्ञानीजनों के द्वारा इसकी स्थिति कभी भी विश्वास के योग्य नहीं है।।137।। जो सब कुछ जानता हुआ भी आत्महित नहीं करता वह रागी है। वैरागी बिना विलंब के मोक्ष पथ पर वृद्धिंगत होता है।।138।। आप सभी निष्ठापूर्वक स्वकर्त्तव्यों का पालन करें, धर्म का आदर करें। सुखी जीवन के लिए सदैव स्वपर हित की प्रवृत्ति करनी चाहिए।।139।। पुनः अपने पुत्र चंदन को राज्यभार सौंपकर परमविशुद्धि से आत्मकल्याण के लिए वन गमन के लिए तत्पर हुए।।140।।

संसार-शरीर-भोगों से विरक्त, स्व-कल्याण के लिए श्रेष्ठ निज आत्म धर्म में अनुरक्त मुनि जयवंत हों। जिन दीक्षा के परिणाम से युक्त नर धन्य है, वीतराग मार्ग पर गमन करने वाला धन्य है।।141।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में राजा पद्मगुल्म के वैराग्य का वर्णन करने वाला तृतीय सर्ग पूर्ण हुआ।

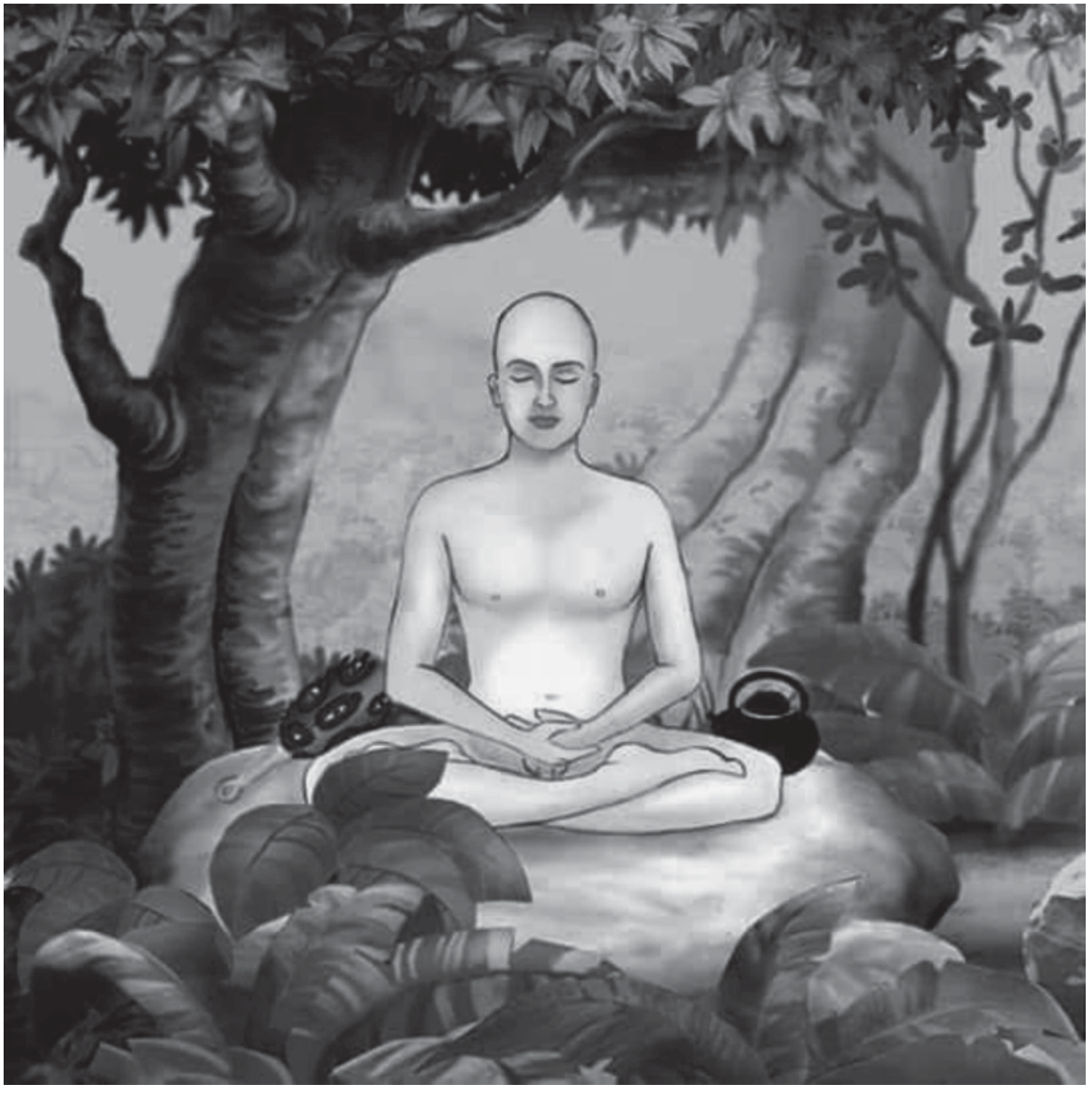

मुनि पद्ममगुल्म सोलहकारण भावनाओं का चिंतन करते हुए

चदुत्थ-सग्गो

परमसुपुज्जमहारिसि - तवोमुत्ति - आणंदमुणिवरस्स दु।
तत्थ पदिक्खणं कट्टु, पुण पुण तं चिय परियंदीअ॥142॥
जस्स सोम्ममुद्दा भव्वाण सुहाणंद-कारणं आसी।
वण्णजंदूणं पसम-भावस्स वि चिय जदिवरं तं॥143॥
देवेहि पुज्जणीयं, आणंदस्स सिंधुमाणंदमुणिं।
णिवेदीअ जहाजाद-दियंबर-दिक्खं गहेदुं च॥144॥
सव्ववत्थाभूसणं, सव्वपरिग्गह-मणंतरं उज्झिय।
जादो जहाजादो हु, लहित्तु तेरसविहं चरियं॥145॥,
पउमगुम्म-मुणिवरेण, अहिंसाइ-महव्वदं पालिदं च।
इरियादी समिदी अवि, णिद्दोसं अइविसुद्धीए॥146॥
पालिदूणं तिगुत्तिं, अप्पज्झाणे णिव्विअप्पं होच्चु।
लीणं तह मूलोत्तर-गुणा पालीअ अप्पहिदाय॥147॥
संजमेणणेगिद्धी, लहिदा सण्णाण-विद्धि-करंतेण।
भव्वाण हिदं करिदुं, भावणा अइविसुद्धो तस्स॥148॥
भविकल्लाणस्स तिव्व-संकिलेस-दया-भावेहि होही।
तित्थयर-सुपइडि-बंधजोग्ग-सुहणिम्मलपरिणामा॥149॥

वहाँ वन में पहुँचकर परम पूज्य महा ऋषि तपोमूर्ति आनंद मुनिवर की प्रदक्षिणा कर उनकी पुनः पुनः स्तुति की॥142॥ जिनकी सौम्य मुद्रा भव्यों के लिए सुख व आनंद की हेतु थी एवं वन्य जंतुओं के लिए प्रशमभाव की निमित्त थी। उन देवों द्वारा पूजनीय आनंद के सिंधु यतिवर श्री आनंद मुनि से यथाजात दिगंबर दीक्षा ग्रहण करने हेतु निवेदन किया॥143-144॥ अनंतर सभी वस्त्र-आभूषण व सर्व परिग्रह का त्यागकर एवं तेरह प्रकार के चारित्र को प्राप्त कर यथाजात दिगंबर मुनि हुए॥145॥ श्री पद्मगुल्म मुनिराज अति विशुद्धि से निर्दोष अहिंसा आदि महाव्रत एवं ईर्यादि समिति का भी पालन कर रहे थे॥146॥ वे मुनिवर तीन गुप्तियों का पालन कर निर्विकल्प हो आत्मध्यान में लीन होकर आत्महित के लिए मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन कर रहे थे॥147॥ सम्यग्ज्ञान की निरंतर वृद्धि करते हुए उन मुनिराज ने संयम से अनेक ऋद्धियों को प्राप्त किया। भव्यजीवों के हित के लिए उनकी भावना अतिविशुद्ध थी॥148॥ भव्यों के कल्याण के लिए तीव्र संक्लेशयुक्त दयाभावों से तीर्थंकर नामक नामकर्म की प्रकृति के बंध के योग्य उनके शुभ-निर्मल परिणाम हुए॥149॥

दंसणविसुद्धाइ-सुह-सोलसकारणभावणा भाविदा।
तेणं उग्गुग्गतवो, करिदो चिय कम्मक्खयत्थं॥150॥
सव्वमलदोसा य परिहरित्तु सगसम्मत्तं विसुज्झंति।
अट्ठंगजुत्तगुणा वि, पसमाइलक्खणं वड्ढीअ ॥151॥
रयणत्तयं तवं पडि, धरीअ महाविणयभावं सोक्खं।
परोप्परे रिसी जदी, पडि उवयारविणयेण जुदो॥152॥
सव्वगुणा आगसिदुं, आगरिसगोव्व फलेण भावणाइ।
विणओ मोक्खद्दारं, विणासगो वि अवगुणाणं च॥153॥
सव्वदियार-विवज्जिद-सीलं सुरपुज्जं तह णिद्दोसं।
तेणं सुपालिदं चिय, अस्सादिदुं सुद्धप्परसं॥154॥
तच्चचिंतणं पहोव्व, लहिदुं स-सहाव-मप्पभोयणं च।
जिणागम-तच्चेसुं दु, संलीणो असुहणिवत्तीइ॥155॥
तच्चचिंतणलीणो य, अभिक्खणणाणुवजोगबलेणं हु।
संवरतच्चं पाविय, खमो विउलणिज्जरं करिदुं॥156॥
धम्मे धम्मफलम्मि य, हरिसो भावो णेयो संवेगो।
सद्दिट्ठीणं णियमा, धम्मस्स पहाण-कारणं तु॥157॥
सगसत्ति-मणुवगूहिय, पच्चक्खाण-तवो करिदो जदिणा।
चागभावजुत्तेणं, रागाइ-भावं विजहेदुं॥158॥

उन्होंने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाऐं भायीं और कर्मक्षय के लिए उग्र-उग्र तप किया॥150॥ सर्व मल दोषों का परिहार कर अपने सम्यक्त्व को विशुद्ध करते हुए मुनिराज में अष्टांगों से युक्त गुण और प्रशमादि लक्षण वृद्धि को प्राप्त हुए॥151॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रस रत्नत्रय व तप के प्रति महाविनय शुभ भाव को धारण किया। वे परस्पर में ऋषि-यति के प्रति उपचार विनय से युक्त थे॥152॥ विनय मोक्ष का द्वार है और यह सब अवगुणों का विनाशक भी है। इस भावना के फलस्वरूप वे सर्व गुणों को आकर्षित करने के लिए चुंबक के समान थे। अर्थात् वे सर्व गुणों से परिपूरित थे॥153॥ शुद्धात्म रस के आस्वादन के लिए वे सर्व अतिचारों से रहित, देवों द्वारा पूज्य, निर्दोष शीलव्रत का पालन करते थे॥154॥ तत्त्वचिंतन निजस्वभाव को प्राप्त करने के लिए मार्ग के समान है, तत्त्वचिंतन आत्मा का भोजन है। वे यतिवर अशुभ की निवृत्ति के लिए जिनागम के तत्त्वों में लीन रहते थे॥155॥ तत्त्वचिंतन में लीन वे मुनिवर अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के बल से संवर तत्त्व को प्राप्त कर विपुल निर्जरा करने में समर्थ थे॥156॥ धर्म व धर्म के फल में हर्ष भाव संवेग जानना चाहिए। यह नियम से सम्यग्दृष्टियों के धर्म का प्रधान कारण है॥157॥ त्यागभाव से युक्त वे यति रागादिभाव के त्याग हेतु अपनी शक्ति को न छिपाते हुए प्रत्याख्यान तप किया करते थे॥158॥

छव्विहो बहिरतवो य, करिदो पउममुणिणा सगसत्तीइ।
विसेसेणंतरतवो, भावणाए कम्मक्खयस्स॥159॥
अण्णसाहुणो पडि सय, करीअ समाहिभावणं भावेहि।
णिव्विअप्प-समाहीइ, रदो वरसमाहिं लहेदुं॥160॥
होही अण्णसाहूण, साहणा-विड्ढीए दु सहजोगी।
आपूरिदो मुणिवरो, परकल्लाण-सुभावणाए॥161॥
चउघाइकम्मरहिदं, अणंतचउक्कजुदमरिहंतं पडि।
भवसिंधुं णित्थरिदुं, तरणीव उहयभत्ती जाण॥162॥
महाविअड्ढं पंचायारस्स पालणे पालावणम्मि।
आइरियं पडि विसेस-भत्ति-भावणाजुदसंजदो॥163॥
अप्पविसुद्धीइ रदं, बारसंग-पढणम्मि पाढणम्मि य।
पाढगं पडि विणदेण, भाविदा सुहभत्ति-भावणा॥164॥
पवयणं जिणवयणं च, साहू मोक्खमग्गो दु एयट्ठो।
पवयण-भत्तिभावणा, भाविदा पउमगुम्ममुणिणा॥165॥
आवसिय-करणीयेसु, कज्जेसु साहुधम्मवड्ढगेसुं।
असुहणिविट्टीए सय, दमी इंदियजयी णिमग्गो॥166॥

कर्मक्षय की भावना से श्री पद्मगुल्म मुनि शक्ति के अनुसार छः प्रकार के बाह्य तप एवं विशेष रूप से छः प्रकार के अंतरंग तप किया करते थे॥159॥ वे निर्विकल्प समाधि में रत मुनिवर स्वयं उत्तम समाधि की प्राप्ति के लिए अन्य साधुओं के प्रति सदैव शुद्ध भावों से समाधि भावना भाते थे॥160॥ परकल्याण की भावना से भरे हुए वे मुनिवर अन्य साधुओं की साधना की वृद्धि में भी सहयोगी हुए॥161॥ चारों घातिया कर्मों से रहित व अनंत चतुष्टय से युक्त अरिहंत परमेष्ठी के प्रति निश्चय एवं व्यवहार रूप उभय भक्ति भव सागर से पार उतरने के लिए नौका के समान जाननी चाहिए॥162॥ पंचाचार का स्वयं पालन करने में व पालन कराने में महानिपुण आचार्य के प्रति वे संयत मुनिवर विशेष भक्ति भावना से युक्त थे॥163॥ आत्मविशुद्धि पूर्वक द्वादशांग के पठन-पाठन में रत उपाध्याय के प्रति वे विनम्र मुनिवर शुभ उपाध्याय भक्ति भावना भाते थे॥164॥ प्रवचन, जिनवचन, साधु व मोक्षमार्ग ये एकार्थवाची हैं। श्री पद्मगुल्म मुनिराज प्रवचन भक्ति भावना भाते थे॥165॥ वे दमी, इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले ऋषिवर अशुभ की निवृत्ति के लिए सदैव साधु के धर्म की वृद्धि करने वाले आवश्यक करने योग्य कार्यों में निमग्न रहते थे॥166॥

पालीअ सय ववहार-धम्मं जिणसासणपहावणाए।
अप्पपहावणाए य, आदावणाइ-तिव्वतवं दु॥167॥
गुणणुरायजुदविसुद्धभावं धारीअ सव्वधम्मी पडि।
णिस्सत्थ-वच्छलेणं, जदी सवरधम्मविड्ढीए॥168॥
आइभावणं भाविय, बंधीअ दु तित्थयरणामकम्मं।
सगगुरुपादमूलम्मि, विणयेण उजुपरिणामेहिं॥169॥
अइगिम्हे गिरिसिहरे, सीदे सरिदातीरे तह करीअ।
तरुमूले वस्साए, आदावणादिं सुभावेहि॥170॥
कयाइ वसु-दस-बारस-चउदस-सोलस-अट्ठारसाणं च।
भुत्तिचागं च करीअ, कयाइ पक्खमासुववासं॥171॥
अणसणूणोदराइं, करीअ पव्वेसु जहासत्तीए।
कायकिलेसाइ-तवं, णियप्पसत्ति-विड्ढीए अवि॥172॥
लहिज्जदि सग्गसोक्खं, इच्छिदविउलभोयं सुहतवेणं।
होज्ज कम्मक्खयो तह, तवस्स किं असज्झं लोए॥173॥
बहुदिग्घकालंतं दु, उग्गतवो कुव्विदो पउममुणिणा।
अणंतरं धारिदा य, वरसल्लेहणा सुमरणस्स॥174॥
तिविहं समाहिमरणं, भत्तपच्चक्खाणं च इंगिणी दु।
पाओवगमण-मरणं, आराहगो आराहदि तं॥175॥

जिनशासन की प्रभावना के लिए वे सदा व्यवहार धर्म का पालन किया करते थे और आत्म प्रभावना के लिए आतापन आदि तीव्र तप किया करते थे॥167॥ वे यतिवर स्व-पर धर्म की वृद्धि के लिए नि:स्वार्थ वात्सल्य से सभी धर्मियों के प्रति गुणानुराग से सहित विशुद्ध भाव धारण करते थे॥168॥ इस प्रकार विनय व मृदु-कोमल परिणामों से इत्यादि भावनाओं को भाकर अपने गुरु के पादमूल में तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति का बंध किया॥169॥ वे शुभ भावों से अति गर्मी में पर्वत के शिखर पर, सर्दी में नदी के किनारे, वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे आतापन आदि योग किया करते थे॥170॥ कभी आठ, दस, बारह, चौदह, सोलह या अट्ठारह भुक्ति का त्याग करते तो कभी पक्षोपवास या मासोपवास करते॥171॥ पर्वों में शक्ति के अनुसार अनशन, ऊनोदर आदि करते थे एवं निजात्मा की शक्ति की वृद्धि के लिए कायक्लेशादि तप भी करते थे॥172॥ शुभ तप से स्वर्ग का सुख वा इच्छित विपुल भोगों को प्राप्त किया जा सकता है व तप से कर्मों का क्षय होता है। तप के लिए लोक में क्या असाध्य है? अर्थात् कुछ भी नहीं॥173॥ श्री पद्मगुल्म मुनिराज ने बहुत दीर्घ काल तक उग्र तप किया। अनंतर श्रेष्ठ समाधि मरण के लिए उत्तम सल्लेखना धारण की॥174॥ समाधि मरण तीन प्रकार के होते हैं—भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनी व प्रायोपगमन मरण। समाधि मरण करने का इच्छुक आराधक इनकी आराधना करता है॥175॥

सद्दंसणं सण्णाण-मह सच्चरियं उहयतवो चदुहा।
कम्मक्खयिदुं करिदा, आराहणा परमरूवेण॥176॥

भत्तपच्चक्खाणे स-देहस्स करिज्जदि वेज्जावच्चं।
सवरेहिं तं जहण्ण-भेयं चिय पंडिदमरणस्स॥177॥

इंगिणीइ सदेहस्स, वेज्जावच्चं करिज्जदि हि सगेण।
ण परेहि जाण मज्झिम-भेयं चिय पंडिदमरणस्स॥178॥

पाओवगमणे णेव, सदेहस्स वेज्जावच्चं सगेण।
करिज्जदि णेव परेहि, पंडिदमरणमुत्तमं जाण॥179॥

शार्दूल विक्रीड़ित छंद

णाणज्झाणजुदेण तेण जदिणा, देहो तदा उज्झिदो।
आणंदेण वरं समाहिमरणं, णिव्वुत्तिदं पाविदं॥
सारज्जं सुहदं च इंदसुपदं, पुण्णेण आवज्जिदं।
णाणज्झाणतवेहि किं ण सुलहो, पुण्णं करेज्जा सया॥180॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र एवं उभय (अंतरंग व बहिरंग) तप ये चार प्रकार की सम्यक् आराधना है। उन मुनिराज ने कर्म क्षय के लिए उत्कृष्ट रूप से आराधना की॥176॥ भक्तप्रत्याख्यान में अपने और दूसरों के द्वारा शरीर की वैय्यावृत्ति की जाती है। यह भक्तप्रत्याख्यान पंडित मरण का जघन्य भेद है॥177॥ इंगिनी मरण में अपने शरीर की वैय्यावृत्ति अपने द्वारा ही की जाती है, दूसरों के द्वारा नहीं। वह पंडितमरण का मध्यम भेद है॥178॥ प्रायोपगमन मरण में अपने शरीर की वैय्यावृत्ति न तो स्वयं के द्वारा की जाती है और न किसी दूसरे के द्वारा। यह पंडित मरण का उत्तम भेद जानना चाहिए॥179॥ तब ज्ञान व ध्यान से युक्त उन यति ने अपनी देह का त्याग किया व मोक्ष को देने वाले उत्तम समाधि मरण को आनंद से प्राप्त किया। पुण्य से उन्होंने सुखद स्वर्ग साम्राज्य व इंद्र पद प्राप्त किया। सच ही है ज्ञान-ध्यान-तप के द्वारा क्या सुलभ नहीं है अर्थात् सब कुछ सुलभ है इसलिए सदैव पुण्य करना चाहिए॥180॥

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में राजा पद्मगुल्म की मुनि दीक्षा, तप व समाधि का वर्णन करने वाला चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ।

श्री नेमिनाथ

पंचम-सग्गो

आणंदेण सयणादु, जागरिअ-पुरिसोव्व होही चिय सो।
दिव्वविहूदिजुदो तह, इंदो हु पण्णरसमसग्गे॥181॥
सगपुण्णं चिंतित्ता, पुव्वभवे करिदं हरसिदमणेण।
सविमाणे जिणबिंबं, अच्चीअ वंदीअ सत्तीइ॥182॥
धादोवधादु - वज्जिद - णिम्मलदेहं तियहत्थपमाणं।
संहणणरहिदरम्मं, कंतिजुदवेगुव्विय - सुहं च॥183॥
काय-फास-रूव-सद्द-पवीयारं णेव तम्मि सग्गम्मि।
बावीसपक्खंतरे, गहीअ उस्सासमिगवारं॥184॥
बावीससहस्सवस्स-अंतरे छुहावेयणीयुदयादु।
पुण्णफलादो कंठे, उक्किट्ठममियं णिज्झरीअ॥185॥
जिणच्चणं कुव्वंतो, जोगत्तयेणं भावविसुद्धीइ।
दिव्वुत्तमरयणेहिं, पूयणं गदरायदेवाण॥186॥
जिणधम्मं पालंतो, सुणंतो दिव्वज्झुणिं जिणवरस्स।
जहाजाद-णिग्गंथा, गुरुवरा तह आरज्झंतो॥187॥
सुमेरुणंदीसराइ - अकिट्टिमजिणालयाणि पव्वेसुं।
सुभत्ति-अणुरागेणं, वंदंतो पज्जुवासंतो॥188॥
दिव्वुत्तमभोया सो, भुंजीअ सगदेवंगणाहिं सह।
बावीससागराउस-इंदो सुहेण आणंदेण॥189॥

वे आनंदपूर्वक शयन से जागे हुए पुरुष के समान पंद्रहवे आरण स्वर्ग में दिव्य वैभव से युक्त इंद्र हुए॥181॥ उन्होंने हर्षित मन से पूर्वभव में अपने द्वारा किए गए पुण्य का चिंतन किया। पुनः अपने विमान में शक्तिपूर्वक जिनबिंब की अर्चना की व वंदना की॥182॥ उस इंद्र का वैक्रियक शरीर धातु व उपधातुओं से रहित व निर्मल था। वह सर्व प्रकार के संहननों से रहित, सुंदर, कांतियुक्त व शुभ था। उसकी अवगाहना तीन हाथ प्रमाण थी॥183॥ उस स्वर्ग में काय प्रवीचार, स्पर्श, रूप व शब्द प्रवीचार नहीं था अर्थात् वहाँ मन में देवांगना का स्मरण करने मात्र से संतुष्टि थी। वह इंद्र बाईस पक्ष में एक बार श्वांस लेता था॥184॥ क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से बाईस हजार वर्ष में पुण्य के फलस्वरूप इंद्र के कंठ में स्वयं उत्कृष्ट अमृत झरता था॥185॥ त्रियोग से भावों की विशुद्धिपूर्वक जिनेंद्र प्रभु की अर्चना करते हुए, वीतरागी देवों की दिव्य-उत्तम रत्नों से पूजा करते हुए, जिनधर्म का पालन करते हुए, जिनेंद्र प्रभु की दिव्यध्वनि सुनते हुए, यथाजात निर्ग्रंथ गुरुओं की आराधना करते हुए, पर्वों में पंचमेरु, नंदीश्वरादि सर्व अकृत्रिम जिनालयों की वंदना व उपासना करते हुए वह बाईस सागर की आयु वाला इंद्र अपनी देवांगनाओं के साथ सुख व आनंद से दिव्य एवं उत्तम भोगों को भोग रहा था॥186-189॥

विदेहस्स दु तित्थयर-सहाइ जंगम-पडिमादंसणस्स।
तस्साणंदो दिव्वज्झुणि-सवणस्स अवण्णणीयो॥190॥

कयाइ तच्चवत्ताइ, धम्मसहाइ आयोजणं कुणीअ।
तत्थ सुराउज्छणाण, उत्तरं दाएज्जा इंदो॥191॥

देवेगेण पुच्छिदं, भो देवराओ! जहत्थसुहं किं।
पडिमंतिदं णिराउल-कम्महीण-सहावुप्पण्णं॥192॥

पुण पुच्छिदं अण्णेण, को सक्को तं लहिदुं हे सामी!॥
भासिदं कम्मभूमिज-सण्णि-पणिंदिय-पुण्णवंतो॥193॥

पुण पुच्छिदो उवाओ, किं तं लहिदुं धम्मप्पिय-णाहो!।
रयणत्तयं हि सस्सद-मुवाओ तं लहिदुं वदीअ॥194॥

रयणत्तयं किं पाणणाहो! पुच्छणे देवंगणाए।
तिलोए अइदुल्लहं, अइमुल्लवाणं तह सुहदं॥195॥

चेयणरयणं सम्मद्दंसणं सण्णाणं सच्चरियं च।
अह सुविणय भावेणं, पडिसाहिदं करा जुंजित्तु॥196॥

विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर की सभा में जंगम प्रतिमा के दर्शन का व उनकी दिव्यध्वनि के श्रवण का आनंद अवर्णनीय था॥190॥ वहाँ कभी तत्त्वचर्चा के लिए धर्म सभा का आयोजन किया जाता था। अन्य देवों के प्रश्नों का उत्तर वह इंद्र दिया करता था॥191॥ एक समय स्वर्ग की धर्म सभा में एक देव ने पूछा-'हे देवराज! यथार्थ सुख क्या है?'' उत्तर देते हुए इंद्र ने कहा कि निराकुल, कर्मों से विहीन व स्वभाव से उत्पन्न सुख ही यथार्थ सुख है॥192॥ पुनः किसी अन्य देव ने पूछा ''हे स्वामी! उस यथार्थ सुख को प्राप्त करने में कौन समर्थ है?'' इंद्र ने पुनः उत्तर दिया-कर्मभूमि में उत्पन्न, संज्ञी पंचेन्द्रिय पुण्यवान् जीव ही उस यथार्थ सुख को प्राप्त कर सकता है॥193॥ एक देव ने पुनः पूछा ''हे धर्मप्रिय नाथ! उस यथार्थ सुख को प्राप्त करने का क्या उपाय है?'' इंद्र ने कहा-रत्नत्रय ही उस यथार्थ सुख को प्राप्त करने का शाश्वत उपाय है॥194॥ तभी एक देवांगना ने पूछा ''हे प्राणनाथ! रत्नत्रय क्या है?'' इंद्र ने अतिविनयभाव से हाथों को जोड़कर उत्तर दिया यह तीन लोक में अतिदुर्लभ, अतिमूल्यवान् व सुखद चेतना के रत्न हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र॥195-196॥

पुण सम्मत्तसरूवे, पुच्छणे चिय इंदा उप्पालीअ।
परमट्ठ भूद-सुदेव-सत्थ-णिग्गंथ-जिणधम्मेसु।।197।।

दिगसड्ढाणं णेयं, संसार-विच्छेदगं सम्मत्तं।
लहदि सिवं जो वि जाण, सम्मत्त-माहप्पं तं खलु।।198।।

जो इगवारं वि लहदि, सम्मत्तं सो हाविदूण करदे।
मेत्तमद्धपोग्गलपरिवट्टणकालपमाणं सभवं।।199।।

इगदेवीइ पुच्छणे, सण्णाणसरूवविसयम्मि वदीअ।
सम्मत्तविणाभावी, णाणं दु सण्णाणं णेयं।।200।।

णूणमहियत्तरहिदं, संसयाइरहिदं णिस्संदेहं।
जहातहं च जिणुत्तं, पमाणं सण्णाणं णेयं।।201।।

चरियविसये पुच्छणे, इंदो वदीअ दुविहं चारित्तं।
तिजोगेहि पावादो, णिवित्ती तहा सुहपवित्ती।।202।।

ववहारचरियं जाण, सुद्धप्पलीणदा णिच्छयचरियं।
सम्मचरित्तबलेण हि, मोक्खदुग्गं पावदि जीवो।।203।।

पुनः किसी के द्वारा सम्यक्त्व का स्वरूप पूछने पर इंद्र ने कहा परमार्थभूत सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, निर्ग्रंथ गुरु व जिन धर्म पर श्रद्धान करना संसार का विच्छेद करने वाला सम्यक्त्व जानना चाहिए। जो भी जीव मोक्ष प्राप्त करता है वह निश्चय से सम्यक्त्व का ही माहात्म्य जानो।।197-198।। जो जीव एक बार भी सम्यक्त्व को प्राप्त करता है वह अपने अनंत संसार को घटाकर उसे अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल प्रमाण मात्र कर लेता है।।199।। पुनः एक देवी ने सम्यग्ज्ञान के स्वरूप के विषय में पृच्छना की तो इंद्र ने कहा कि सम्यक्त्व का अविनाभावी ज्ञान सम्यग्ज्ञान जानना चाहिए।।200।। जो न्यूनता व अधिकता से रहित है, संशयादि से रहित है, निःसंदेह अर्थात् संदेह रहित है, जैसे का तैसा-याथातथ्य है एवं जिनेंद्र देव के द्वारा कथित है, वह प्रमाण ज्ञान सम्यग्ज्ञान जानना चाहिए।।201।। किसी अन्य के द्वारा चारित्र के विषय में पूछने पर इंद्र ने कहा तीनों योगों से पापों से निवृत्ति तथा शुभ में प्रवृत्ति व्यवहार चारित्र जानो एवं शुद्धात्मा में लीनता निश्चय चारित्र है। जीव सम्यक् चारित्र के बल से ही मोक्ष रूपी महल को प्राप्त करता है।।202-203।।

धम्मसरूवपुच्छणे, लोयवालेणं सीसीअ इंदो।
सगसिद्धत्त-कारणं, सुहयरो दुहहरो धम्मो हु।।204।।

देवेगेण पुच्छिदं, धम्मभेअं पडिमंतिद-मिंदेण।
सायारणयाराणं, भेदेणं बेविहो धम्मो।।205।।

अणुव्वयरूवधम्मो, सायारो वा सावयधम्मो तह।
महव्वयरूवधम्मो, अणयारो चिय समणधम्मो।।206।

सायारो सिवहेदू, परंपराए दु णिगड-भव्वाणं।
पच्चक्खेणणयारो, जिणमुद्दा णिव्वाण-हेदू।।207।।

ताण सव्वपुच्छिदाण, पिण्हाण उत्तरं देज्जा इंदो।
समये समये सुणाणविड्ढीए हंदि विणयेणं।।208।।

इत्थं पुण्णकज्जाणि, कुव्वंतो भत्तिं थुदिमच्चणं च।
पुण्णफलं भुंजंतो, सुहेणिंदो सग्गे जवीअ।।209।।

छम्मास-सेसे तेण, सुक्कलेस्साइ बंधिदं णराउं।
आयंबीअ दु सीहासणं सोहम्मिंदस्स तदा।।210।।

पुनः किसी देव के द्वारा धर्म का स्वरूप पूछने पर इंद्र ने कहा सुख को करने वाला, दुःख को हरने वाला व स्वसिद्धत्व का कारण धर्म है।204।। एक देव के द्वारा धर्म के भेद पूछने पर इंद्र ने उत्तर दिया कि धर्म दो प्रकार का है-सागार धर्म व अनगार धर्म।।205।। अणुव्रत रूप धर्म सागार या श्रावक धर्म कहा जाता है तथा महाव्रत रूप धर्म अनगार या श्रमण धर्म कहा जाता है।।206।। सागार धर्म निकट भव्यों के लिए परंपरा से मोक्ष का हेतु है एवं अनगार धर्म या जिनमुद्रा प्रत्यक्ष रूप से मोक्ष का हेतु है।।207।। सम्यग्ज्ञान की वृद्धि के लिए समय-समय पर उन देव व देवांगनाओं के प्रश्नों के उत्तर वह इंद्र विनय भाव पूर्वक दिया करता था।।208।। इस प्रकार भक्ति, स्तुति, अर्चनादि पुण्यकार्यों को करते हुए, पुण्य का फल भोगते हुए उस इंद्र का काल स्वर्ग में सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा है।।209।। आयु के छः माह शेष रहने पर उस इंद्र ने शुक्ल लेश्या के साथ मनुष्यायु का बंध किया तब सौधर्मेन्द्र का सिंहासन कंपायमान हुआ।।210।।

कंवमाण-सीहासण-मवक्खिय ओहिणाणेण जाणिदो।
सोहम्मेण सडमास-पच्छा आरणिंदो चुयिय होज्जा।।211।।

धम्मपवट्टगो लोय-कल्लाणकारगो तह तित्थयरो।
जंबूदीवस्स भरद-खेत्ते अज्जखंडे दहमो।।212।।

विसुद्धाणंदजुदेण, कुबेरिंदो आयारिदो तदा हु।
तह कहिदं तित्थयरो, अवयरिस्सदे हु सग्गादो।।213।।

सोहम्मिंदाणाए, णिम्माविदा मणोहरा धणदेण।
मलयदेसस्स भद्दिल-णयरी सग्ग-अलकापुरीव।।214।।

अंतरमुहुत्ते रयिद-णयरीए चउदिसासुं मज्झे य।
पुण्णालयरूवाणि वि, पंचजिणालयाणि रयिदाणि।।215।।

छमासपच्छा दिवादु, अवयरिस्सदि करीअ रयणविट्टिं।
कप्पद्दुम-उम्मुत्ता, पुप्फ-परंपरा व णहेणं।।216।।

पच्छा णवमासेसु वि, वसुहारा पडिदिणे चउसंझासु।
आउट्टिकोडिरयणाण, तित्थयर-महापहावो हु।।217।।

सिंहासन के कंपायमान होने पर इंद्र ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि छः माह पश्चात् आरणेन्द्र च्युत होकर जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखंड में लोक कल्याणकारक धर्मप्रवर्तक दसवे तीर्थंकर होंगे।।211-212।। तभी विशुद्ध आनंद से युक्त सौधर्म इंद्र ने कुबेर इंद्र को बुलाया एवं कहा कि अब स्वर्ग से श्री तीर्थंकर प्रभु अवतरित होंगे।।213।। सौधर्म इंद्र की आज्ञा से धनद कुबेर इंद्र ने स्वर्ग की अल्कापुरी के समान मनोहर मलयदेश की भद्दिल नगरी का निर्माण किया।।214।। देव ने अंतर्मुहूर्त में ही उस नगरी की रचना की। उस नगरी की चारों दिशाओं में एवं मध्य में पुण्य के भवन रूप पाँच जिनालयों का भी निर्माण किया।।215।। छह महीने बाद स्वर्ग से तीर्थंकर प्रभु अवतरित होंगे अतः देवों ने आकाश से रत्नों की वृष्टि की मानो कल्पवृक्षों द्वारा छोड़े गए पुष्पों की परंपरा ही हो।।216।। इस प्रकार छह महीने के बाद भी नौ महीने तक प्रतिदिन चारों संध्याकाल में साढ़े तीन करोड़ रत्नों की देवों द्वारा वर्षा होती रही। यह तीर्थंकर का महाप्रभाव था।।217।।

तत्थ णिवो दिढरायो, कप्पतरुव्व इच्छिद-फलदायगो।
चंदोव्व कलाहारो, अइसयजसवंती सूरो य॥218॥
इंदोव्व विहवजुत्तो, णायप्पियो पयाए भयवदोव्व।
भद्दो य सच्चवायी, गुणजुदो महाबुद्धिमंतो॥219॥
महाराणी सुणंदा, धम्मजुदा मणोहरा धीमंता।
मंगल्ल-पुण्णवंता, सतित्तस्स तह परासीमा॥220॥
अइसोहग्गिआ तहा, णिहाणं अप्पडिम-सुंदरिमाए।
खमा-दया-वच्छलाइ-गुणा ताइ परिवारजणा व॥221॥
दंपत्ती पुण्णरूव-संपत्तीए सामी सपुण्णेण।
जवीइ आणंदेणं, सरलणिराउलचित्तेणं च॥222॥
जहवि तदा जिणधम्मो, ण तहवि पुव्वसक्कारवसेण सो।
कल्लाणभावजुत्तो, लोयस्स सव्वपाणीणं च॥223॥
सव्वुद्धारभावणं, धरंता भावीअ राणि-सुणंदा।
जम्मदु को वि पुरिसो हु, अहिंसाधम्मपवट्टगा य॥224॥
लोए भमिद-जणाणं, सम्ममग्गं सया पदंसणट्ठं।
हे भयवो! जम्मेज्जा, उक्किट्ठ करुणाजुदपुरिसो॥225॥

वहाँ भद्दिल नगरी का राजा दृढ़राज था। वह कल्पवृक्ष के समान इच्छित फलदायक, अतिशय यशवान् व शूर था। वह चंद्रमा के समान कलाओं से युक्त था। अर्थात् वह राजा विभिन्न कलाओं का ज्ञाता था॥218॥ वह राजा इंद्र के समान वैभव से युक्त, न्यायप्रिय, भद्र, सत्यवादी, गुणों से युक्त, महाबुद्धिमान् एवं प्रजा के लिए भगवान् के समान था॥219॥ वहाँ महारानी सुनंदा धर्म से युक्त, मनोहर, बुद्धिमान्, कल्याणकारी, पुण्यवान् तथा सतीव की उत्कृष्ट सीमा थी॥220॥ वह अति सौभाग्यशालिनी तथा अप्रतिम सुंदरता का खजाना थी। क्षमा, दया, वात्सल्य आदि गुण उनके परिवारीजन के समान थे॥221॥ पुण्य रूप संपत्ति के स्वामी वे दंपत्ति अपने पुण्य व आनंद के साथ सरल व निराकुल चित्त से अपना काल व्यतीत कर रहे थे॥222। यद्यपि उस समय वहाँ जिनधर्म नहीं था तथापि वह राजा दृढ़रथ पूर्व संस्कार के वश से लोक के सर्व प्राणियों की कल्याण भावना से युक्त था।223॥ सबके उद्धार की भावना धारण करते हुए रानी सुनंदा भावना भाती थी कि अहिंसा धर्म का प्रवर्तन करने वाले किसी पुरुष का जन्म होना चाहिए॥224॥ वे भावना भाती थीं हे भगवन्! लोक में भ्रमित जनों को सम्यक् मार्ग प्रदर्शित करने के लिए उत्कृष्ट करुणा से युक्त पुरुष का जन्म होना चाहिए॥225॥

अइसयपुण्णवंतेसु, हवेदि पुण्णभावणा णियमेणं।
पुण्णहीणे णो पुण्ण-भावो रविं विणा किरणोव्व।।226।।

सुक्कणदी लहिदूणं, जलं भासदि करंता कलमित्थं।
फुडदे सगभावं जह, हरिसेण णच्चंत-हसंता।।227।।

सा हु समुद्दे मिलिदुं, विसालरूव-रयणायरो होदुं।
तिव्वकंखाजुदा णिय-गब्भे रयणाणि धारेदुं।।228।।

तह सगगब्भम्मि अप्प-रयणजुद-महापुरिसं धारेदुं।
लोयहिदत्थं णिम्मल-भावं भावीअ राणी सा।।229।।

हरिणी छंद

लहदि हु फलं जीवो णिच्चं तहा जह चिंतदे।
करदि वि हियं सव्वाणं जो सु चिंतदि सव्वदा।।
हवदि हि सयायाले खेत्ते दु तस्स सुमंगलं।
अणघमुणिणो अक्खादं भावणा भव-णासगा।।230।।

नियम से अतिशय पुण्यवानों में ही पुण्य की भावना होती है। पुण्य से हीन में पुण्य का भाव वैसे ही नहीं होता जैसे सूर्य के बिना उसकी किरणें नहीं होतीं।।226।। शुष्क नदी जल को प्राप्त कर इस प्रकार प्रतिभासित होती है जैसे मधुर ध्वनि कल-कल करती हुई, हर्षपूर्वक नृत्य करती हुई, हँसती हुई अपने भावों को प्रकट कर रही हो। वह नदी समुद्र में मिलने, विशाल रूप वा रत्नाकर होने एवं निज गर्भ में रत्नों को बसाने की तीव्र आकांक्षा से युक्त थी। उसी प्रकार महारानी सुनंदा लोक हित के लिए अपने गर्भ में आत्मा के गुण रूपी रत्नों से युक्त महापुरुष को धारण करने के लिए निर्मल भावना भाती थी।।227-229।।

जीव जिस प्रकार नित्य चिंतन करता है उसी प्रकार का फल प्राप्त करता है। जो सदा सबका हित करता है, हित का चिंतन करता है उसका हरकाल व क्षेत्र में मंगल होता है। पाप से रहित मुनिराज ने कहा भी है कि भावना भव-नाशिनी होती है।।230।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में इंद्र के स्वर्ग का वैभव एवं जन्म से छः माह पूर्व ही होने वाले उत्सव का वर्णन करने वाला पंचम सर्ग पूर्ण हुआ।

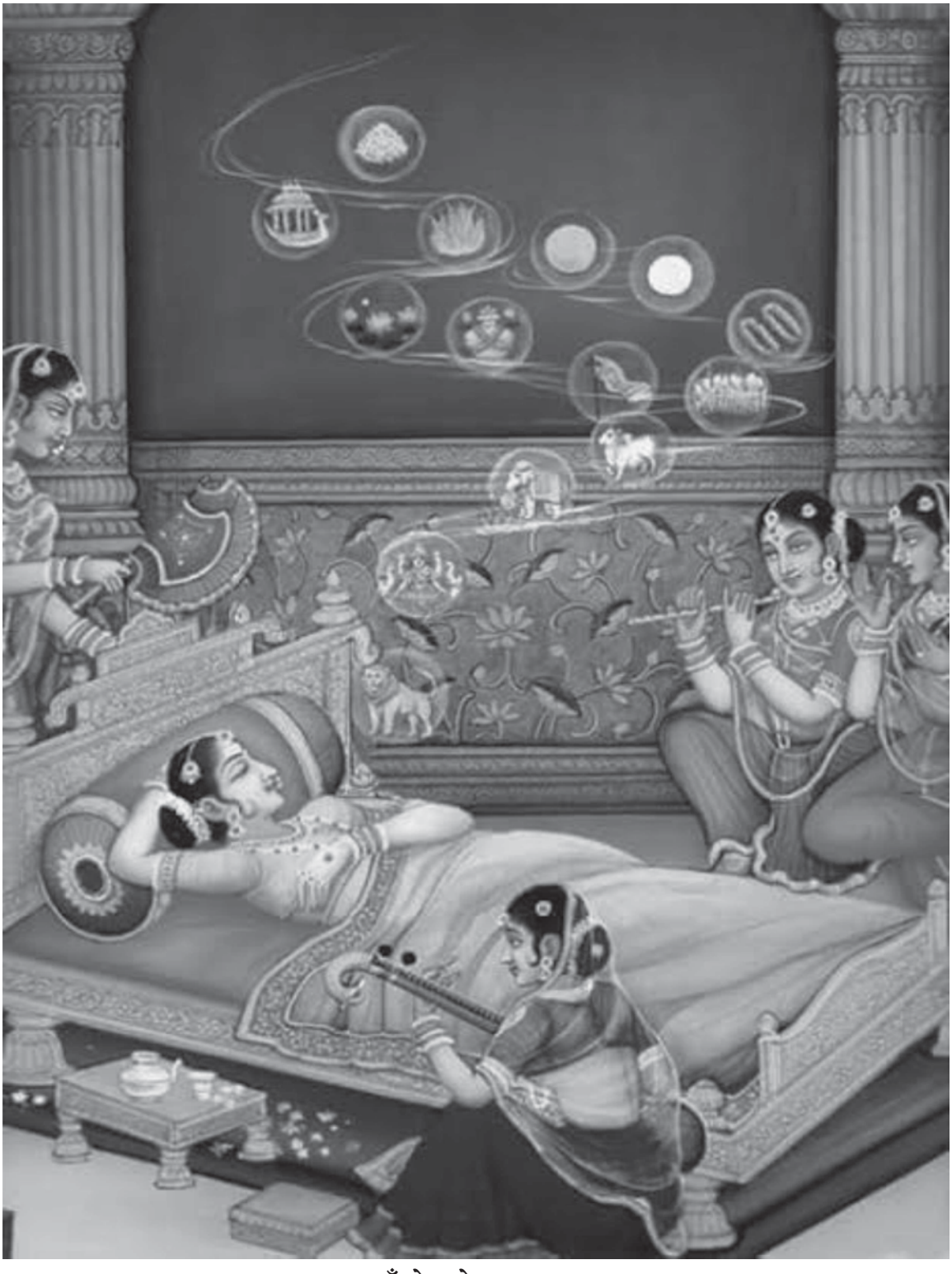

माँ के सोलह स्वप्न

छट्ठम-सग्गो

राणी-सुणंदा य रयधम्मदो पवित्तं होच्चा सयीअ।
स-पइणा सह एयदा, णिराउल-पफुल्लिद-चित्तेण।।231।।

सुहफलदायगाणि जिणजम्मसूचगाणि सोलससिविणाणि।
तदा ताए दु पच्छिम-यामे रत्तीइ पस्सिदाणि।।232।।

सघण-मेहं व धवलं, अइविसालकायं साहिमाणिं च।
गंभीररव-संजुदं, मदजुदगजिंदं णिअच्छीअ।।233।।

विदियम्मि डिंडीरं व, सुहंसुकिरणं व जदिपरिणामं व।
मंद-गंभीर-रवजुद-मुसहं अइभद्दं पस्सीअ।।234।।

पउमं व रत्त-सुखंध-संजुदं सेदकुमुदणीव सुक्कं।
परक्कमिं केहरिं च, अवयज्झीअ तिदियसिविणम्मि।।235।।

सुरवारणेहि सुवण्ण-कलसेहिं दु अहिसित्त-महालच्छिं।
पउमासणम्मि ठिदं च, आणंद-विट्टिं कुव्वंतं।।236।।

सुरपुप्फेहिं णिम्मिद-बे-दामाणि मादूइ पेच्छिदाणि।
संगीदसंजुदाणि व, पंचमे अइ-आणंदेणं।।237।।

एक दिवस महारानी सुनंदा ने रजधर्म से पवित्र होकर निराकुल व प्रफुल्लित चित्त से अपने पति के साथ शयन किया।।231।। तब उन्होंने रात्रि के अंतिम पहर में शुभ फलों को देने वाले, जिनेंद्र प्रभु के जन्म की सूचना देने वाले सोलह स्वप्न देखे।।232।। पहले स्वप्न में उन्होंने घने श्वेत बादलों के समान धवल, बहुत विशाल काय, स्वाभिमानी, गंभीर शब्द से संयुक्त एवं मद युक्त गजेंद्र अर्थात् ऐरावत हाथी को देखा।233।। द्वितीय स्वप्न में उन्होंने एक बैल देखा जो समुद्र के फेन के समान धवल, चंद्रमा की किरण के समान शुक्ल वर्णी, मुनि के परिणामों के समान निर्मल था। वह मंद व गंभीर शब्द से युक्त एवं अतिभद्र था।।234।। तृतीय स्वप्न में उन्होंने एक शेर देखा जो कमल के समान लाल वर्ण के श्रेष्ठ कंधों से युक्त था। वह श्वेत कुमुदनी के समान शुक्ल वर्ण वाला था एवं पराक्रमी था।।235।। चौथे स्वप्न में उन्होंने महालक्ष्मी को देखा। जो आनंद की वर्षा करती हुई कमलासन पर विराजमान थी एवं देवों के हाथी स्वर्ण कलशों से उसका अभिषेक कर रहे थे।।236।। पाँचवे स्वप्न में अतिआनंद से माता ने दो मालाएँ देखीं जो सुरपुष्पों से बनी हुई थीं, ऐसा लगता था मानो संगीत से युक्त ही हों।।237।।

छट्ठमे दु पुण्णचंद - मंडलं सोलसकलासंजुत्तं।
अमियविट्ठिं कुणंतं, वरजुण्हाजुद-माअक्खीअ॥238॥
केसरिल्ल-वण्णवंत-मुदीयमाणं सुदिव्वमत्तंडं।
तिमिरं हरिदु-मुच्छुगं, अवआसीअ सत्तम-सिविणे॥239॥
सरसिरुहेहि पिहिआणि, बेकलहोयकलसाणि विअक्खीअ।
दिव्वरयणसंजुदाणि, मंगल्लाणि अट्ठमसिविणे॥240॥
फुल्लपउमसरोवरे, किलिकिंचंता अइआणंदेणं।
अवयच्छीअ दुमीणा, हिरण्णमयाणि णवमसिविणे॥241॥
पउममकरंदेणं च, पीदजलजुदं सुवण्णपूरिदं व।
बालक्कं व मणोहर-पउमेहिं सोहिदं सरसिं॥242॥
खीरसायरं व महा-समुद्दं उत्तुंगवेलाजुत्तं।
बुब्बुदेहि पिहिदतडं, जिणभामंडलं व पस्सीअ॥243॥
बहुरयणरासिसंजुद- मुत्तुंग- सीहासणं पुलोगीअ।
केवलिस्स आसणं व, हिमवणणगे राजिद-रविं व॥244॥

छठे स्वप्न में उन्होंने पूर्ण चंद्र मंडल देखा जो सोलह कलाओं से युक्त था। वह अमृत वृष्टि करता हुआ उत्कृष्ट चांदनी से संयुक्त था॥238॥ सातवे स्वप्न में उन्होंने केसरिया वर्ण वाला उदित होता हुआ व अंधकार को नष्ट करने के लिए उत्सुक श्रेष्ठ दिव्य सूर्य को देखा॥239॥ अष्टम स्वप्न में उन्होंने दो स्वर्ण कलश देखे जो कमलों से ढके हुए थे। दिव्य रत्नों से युक्त व मंगलकारी थे॥240॥ नौवे स्वप्न में उन्होंने दो स्वर्णमय मछलियाँ देखीं जो अति आनंद से फूले हुए कमल के सरोवर में क्रीड़ा कर रही थीं॥241॥ दसवे स्वप्न में उन्होंने एक तालाब देखा। जिसका जल कमल के पराग से पीतवर्णी हो गया था। ऐसा लग रहा था मानो उसे स्वर्ण से ही भरा गया हो। वह सरोवर बाल सूर्य के समान वर्ण वाले कमलों से सुशोभित था॥242॥ ग्यारहवे स्वप्न में उन्होंने क्षीर सागर के समान महासमुद्र को देखा, जो ऊँची-ऊँची लहरों से युक्त था। उसकी जल की बूँदों से ढ़का हुआ तट ऐसा लग रहा था मानो श्री जिनेंद्र प्रभु का भामंडल ही हो॥243॥ बारहवे स्वप्न में उन्होंने उत्तुंग सिंहासन देखा जो बहुत रत्न राशि से संयुक्त था। वह सिंहासन ऐसा लग रहा था मानो केवली भगवान् का सिंहासन ही हो अथवा हिमवन् पर्वत पर राजित सूर्य ही हो॥244॥

बहुविह-मणिरयणजुदं, सग्गविमाणं दिव्वकंतिवंतं।
अवयच्छीअ सिविणम्मि, सपुत्तस्स पसवागारं व।।245।।

अहोलोयादो पगड-उवहारं व सुहणागिंदभवणं।
अच्चंतमहिमावंत-मोअक्खीअ चिय चउदसमे।।246।।

मज्झलोएण जिणस्स, पयपउमेसु अल्लिविद-णिहाणं व।
जगे विम्हयकारगं, अवआसीअ सुरयणरासिं।।247।।

णिग्गद-महाकंतिं व, अणेग-सुहजोदिसविमाणादो दु।
णिद्धूम-वइस्साणर-मवयज्झीअ आणंदेणं।।248।।

सोलसाणि णिअच्छित्तु, पस्सीअ पीदकंतिवंतभद्दं।
अइविसुद्धअणूहि-णिम्मिद-पविसंतं मुहे उसहं।।249।।

मंगल्लघोसगाणं, सुणिय जग्गिदा सुसज्जिदा राणी।
सुवत्थाभूसणेहिं, सगपइ-अंतियं पहुच्चीअ।।250।।

वदीअ पणामं कडुअ, विणयेण सीहासणासीण-णिवं।
देवो! णिसीइ अंतिम-यामे मए पस्सिदाणि चिय।।251।।

अब्भुदफलदायगाणि, सोलससिविणाइं मणोहराइं।
अज्जं सुहंकराइं, सामी! वद इमाण फलाइं।।252।।

तेरहवे स्वप्न में उन्होंने दिव्य कांतिवान् स्वर्ग का विमान देखा जो बहुत प्रकार के मणि व रत्नों से युक्त था। वह ऐसा लग रहा था मानो अपने पुत्र का प्रसवागार ही हो।।245।। चौदहवे स्वप्न में उन्होंने अत्यंत महिमान् शुभ नागेंद्र भवन देखा। वह ऐसा जान पड़ता था मानो अधोलोक से प्रकट उपहार ही हो।।246।। पंद्रहवे स्वप्न में उन्होंने श्रेष्ठ रत्न राशि को देखा जो संसार में आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो मध्य लोक ने जिनेंद्र प्रभु के पद कमलों में अपना खजाना ही अर्पित किया हो।।247।। सोलहवे स्वप्न में उन्होंने आनंदपूर्वक निर्धूम अग्नि को देखा। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो अनेक शुभ ज्योतिष विमानों से निकली महाकांति ही हो।।248।। ये सोलह स्वप्न देखने के पश्चात् उन्होंने मुख में प्रवेश करते हुए वृषभ को देखा जो पीत कांति से युक्त, भद्र, अति विशुद्ध परमाणुओं से निर्मित था।।249।। मंगलकारी घोष व मंगल गानों को सुनकर रानी सुनंदा जागीं। पुनः श्रेष्ठ वस्त्र व आभूषणों से सुसज्जित हो अपने पति के निकट पहुँची।।250।। वहाँ सिंहासन पर विराजमान अपने पति को विनयपूर्वक प्रणाम कर बोलीं हे देव! मैंने आज रात्रि के अंतिम पहर में आश्चर्यकारी सोलह स्वप्न देखे। हे स्वामी! आप इन स्वप्नों का फल कहिए।।251-252।।

विसिट्ठणाणेण सिविण-फलाणि जाणंतेण दिढरायेण।
कहिदाणि सुणंदाए, पफुल्लिद-चित्तेणं तदा हु।।253।।

एरावद-पस्सणादु, तुमं लहिस्सदि परमोत्तम-पुत्तं।
साहिमाणिं उदारं, विसालहिअयवंतं सेट्ठं।।254।।

उसहस्स इक्खणादो, णिम्मलपरिणामसंजुदो चोक्खो।
भद्दो संतो होज्जा, तव पुत्तो लोयम्मि जेट्ठो।।255।।

अणंतबलसंजुत्तो, केहरिस्स दु अवलोयणादो सो।
होस्सदे विरागभाव-सहिदो बहुपरक्कमी तहा।।256।।

दामाण दंसणादो, धम्मतित्थपवट्टगो णियमादो।
तिलोयपुज्जो होज्जा, सव्वकल्लाणकारगो चिय।।257।।

अहिसित्तपउमाए दु, णिअणादु मेरुकिद-पंडुगसिलाइ।
होज्जा अहिसित्तो सो, सोहम्मिंदाइ-देवेहिं।।258।।

पुण्णचंद-पेच्छणादु, संसारतावहारगो णियमेण।
होस्सदे तव सुपुत्तो, सव्वजणाणंदकारगो दु।।259।।

मत्तंड-पुलोअणादु, अक्खुण्ण-महापहावधारगो य।
असंखभव्वाण मोह-तिमिरहारगो कंतिवंतो।।260।।

तब विशिष्ट ज्ञान से स्वप्नों का फल जानकर राजा दृढ़रथ आनंदित चित्त से रानी सुनंदा के लिए स्वप्नों के फल कहने लगे।।253।। हे देवी! ऐरावत हाथी के देखने से तुम्हें विशाल हृदय वाले, स्वाभिमानी, उदार, श्रेष्ठ एवं परमोत्तम पुत्र की प्राप्ति होगी।।254।। बैल के देखने से तुम्हारा पुत्र निर्मल परिणाम से युक्त, पवित्र, भद्र, शांत एवं लोक में ज्येष्ठ होगा।।255।। सिंह को देखने से वह पुत्र वैराग्य भाव से सहित, बहुत पराक्रमी व अनंत बल से युक्त होगा।।256।। मालाओं के देखने से वह नियम से तीनों लोकों में पूज्य, धर्म तीर्थ प्रवर्तक एवं सबका कल्याण करने वाला होगा।।257।। अभिषिक्त लक्ष्मी के देखने से वह मेरु पर्वत पर स्थित पांडुक शिला पर सौधर्मेंद्रादि देवों के द्वारा अभिषिक्त होगा।।258।। पूर्ण चंद्र के देखने से आपका सुपुत्र नियम से संसार ताप को हरने वाला एवं सभी लोगों के लिए आनंदकारक होगा।।259।। सूर्य के देखने से वह अक्षुण्ण महाप्रभाव का धारक होगा। वह असंख्य भव्यों के मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने वाला एवं कांतिवान् होगा।।260।।

णिस्सीमणेगणिहीण, सामी दु लोयाणंद-वड्ढगो य।
दोण्णिहिरण्णघडाणं, आलोअणादो होस्सदि सो।।261।।

पणिंदिय-विउलसुहाणि, आमुयित्ता लहिस्सदि सो णियमा।
सस्सदणंतप्पसुहं, जुगलमीण-णिज्झाणादो हु।।262।।

अट्ठोत्तर-सहस्स-सुह-लक्खणजुत्तो होज्ज पुण्णवंतो।
पउमपुप्फेहि सोहिद-सरोवर-दंसणादो सो दु।।263।।

होज्जा केवली घादिकम्मं णस्सिदूणं लहिस्सदे य।
अणंतचदुट्ठयं सो, रयणायर-अवलोयणादो।।264।।

दिव्वरयणमय-सीहासण-अवक्खणादो होज्जा पुत्तो।
जगगुरु जगप्पहाणो, जगपुज्जो य जगप्पगासो।।265।।

देवविमाण-णिअणादो, सग्गादो अवयरिस्सदे पुत्तो।
देवोव्व सुदिव्वविहव-संजुत्तो पुण्णालयो सो।।266।।

ओहिणाणी होज्ज सो, सव्वपोग्गला जाणिदुं समत्थो।
जेण णिम्मलणाणेण, णागिंदभवण-दंसणादो।।267।।

रयणरासि-इक्खणादु, अणंतगुणणिहाणं होस्सदे तव।
संसारतीररूवो, पुत्तो पुण्णवंतो देवी!।।268।।

दो स्वर्णमय कलशों को देखने से वह नि:सीम अनेक निधियों का स्वामी एवं लोक में आनंद की वृद्धि करने वाला होगा।।261।। युगल मछलियों के देखने से वह पंचेंद्रिय के विपुल सुखों का त्याग कर नियम से आत्मा के शाश्वत, अनंत सुख को प्राप्त करेगा।।262।। कमल के पुष्पों से सुशोभित सरोवर के देखने से वह पुण्यवान् एवं एक हजार आठ शुभ लक्षणों से युक्त होगा।।263।। समुद्र को देखने से वह घातिया कर्मों को नाशकर केवली होगा एवं अनंत चतुष्टय प्राप्त करेगा।।264।। दिव्य रत्नमय सिंहासन देखने से वह पुत्र जगत्गुरु, जगत्प्रधान, जगत् पूज्य एवं संसार को प्रकाशित करने वाला होगा।।265।। देवों के विमान को देखने से वह पुत्र स्वर्ग से अवतरित होगा और देव के समान उत्तम दिव्य वैभव से संयुक्त और पुण्य का भवन रूप होगा।।266।। नागेन्द्र भवन के देखने से वह पुत्र अवधिज्ञानी होगा। जिस निर्मल ज्ञान से वह सर्व पुद्गलों को जानने में समर्थ होगा।।267।। हे देवी! रत्नराशि के देखने से आपका पुत्र अनंत गुणों का निधान होगा। वह संसार का तट रूप व पुण्यवान् होगा।।268।।

होज्ज सो घादि-अघादि-सव्वकम्मरूव-ईंधण-दाहगो।
सुक्कज्झाणग्गिणादु, णिद्धूमग्गि-अवलोयणादु।।269।।

तव णिम्मल-गब्भम्मि दु, लोयकल्लाणकारग-तित्थयरो।
अवयरेज्ज सग्गादो, मुहे उसहस्स पवेसणादु।।270।।

आयण्णिय सिविणाणं फलाइं अइ-आणंदिया होही।
अयाचिद-बहुणिहीए, पत्तेय अइणिद्धणोव्व चिय।।271।।

मोक्खपत्तीए सुणिय, जिणवयणं लहदि असीमाणंदं।
जह चिय भव्वुल्लो तह, उप्पुलइआ सुणंदा सा दु।।272।।

जह मीणो लहदि सुहं, णिस्सीम-णीरजुद-तरंगिणीए।
तह अव्वत्तसुहं ते, दंपत्ती लहेज्ज वत्ताइ।।273।।

पुण तित्थयर-पइडि-जुद-इंदो दु अवयरीअ आरणादो।
ताणं सुहपुण्णेणं, चेत्त-किण्ह-अट्ठमि-तिहीए।।274।।

पुव्वासाढ-उडुम्मि दु, तदा सुत्तीइ मुत्ता व ठिदो सो।
मादुसुणंदागब्भे, रत्तीए अंतिमयामम्मि।।275।।

गब्भवदारं जाणिय, सगचिण्हेण आगद-सव्विंदेहि।
सुणयरस्स पदक्खिणं, कट्टु पणमिदं तदा पिदरं।।276।।

निर्धूम अग्नि के देखने से वह शुक्ल ध्यान की अग्नि के द्वारा घातिया-अघातिया सब कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा।।269।। मुख में वृषभ के प्रवेश करने से लोक कल्याणकारक तीर्थंकर स्वर्ग से आपके निर्मल गर्भ में अवतार लेंगे।।270।। स्वप्नों के फलों को सुनकर रानी सुनंदा ऐसे अति आनंदित हुई जैसे अति दरिद्र व्यक्ति को बिना माँगे ही बहुत निधि की प्राप्ति होने पर आनंद की प्राप्ति होती है।।271।। पति के मुख से स्वप्न फल सुन वे रानी सुनंदा उसी प्रकार रोमांचित थीं जैसे भव्यजीव मोक्ष प्राप्ति के लिए जिन वचन को सुनकर असीम आनंद प्राप्त करता है।।272।। जैसे मछली नि:सीम जल से युक्त नदी में सुख प्राप्त करती है उसी प्रकार वे दंपत्ति चर्चा करते हुए अवक्तव्य सुख को प्राप्त कर रहे थे।।273।। पुन: उन दंपत्ति के शुभ पुण्य से चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में रात्रि के अंतिम पहर में तीर्थंकर प्रकृति से युक्त इंद्र आरण स्वर्ग से अवतरित हुए। वे माता सुनंदा के गर्भ में उसी प्रकार स्थित हुए जैसे सीप में मोती स्थित होता है।।274-275।। तब अपने-अपने यहाँ होने वाले चिह्नों से भगवान् के गर्भावतार को जानकर सभी इंद्र वहाँ आए और सभी ने उस शुभ नगर की परिक्रमा कर माता-पिता को प्रणाम किया।।276।।

सचिइंदाणीइ सहिद - खयियसम्माइट्ठि - देविंदेण वि।
आगमिय पुज्जिदा पिदु-दिढरह-मादुसुणंदा तत्थ॥277॥

संगीद-णच्चादीहि, गब्भकल्लाणस्स उच्छवं कडुअ।
णिस्सीम-आणंदेण, सव्वसुरा सग्गं गच्छीअ॥278॥

तदा पभिई दासी व, बहुदिक्कुमारी जोग्गकज्जेहिं।
सोहम्मिंदाणाए, मादुसेवाए तप्परा दु॥279॥

सिरि-हिरि-धिदि-कित्ति-बुद्धि-लच्छीहिं सडकुमारि-देवीहिं।
सगसुपुण्णं वड्ढिदं, मादुसेवासक्काराए॥280॥

सुगब्भसोहणं किदं, दिवादु आहरिद-पवित्त-दव्वेहि।
ताहि देवीहि पढमं, पसण्णचित्तजुत्त-मादुस्स॥281॥

मंगलदव्वधारगा, कइवय-पसाहया अंगरक्खगा।
कइवया संवाहया, कइवया तंबूलदायगा॥282॥

धम्मभावजुदाणंद-णिमित्तं मणरंजणं च कुव्वीअ।
तदा मादुसेवाए, णिउत्त-देवीओ दु ताए॥283॥

पसण्णमुहेणं महुर-गाणजुददेवीओ णच्चादीहि।
भिण्ण-भिण्ण-पयारेण, ता खलु करीअ मादुसेवं॥284॥

शचि इंद्राणी सहित क्षायिक सम्यग्दृष्टि देवराज सौधर्म इंद्र ने वहाँ आकर पिता दृढ़रथ एवं माता सुनंदा की पूजा की॥277॥ सभी देव नि:सीम आनंद से गीत, नृत्य आदि के साथ गर्भ कल्याणक का उत्सव कर स्वर्ग चले गए॥278॥ सौधर्म इंद्र की आज्ञा से उसी समय से लेकर बहुत दिक्कुमारी देवियाँ उस समय होने वाले योग्य कार्यों में एवं दासी के समान माता की सेवा में तत्पर हुईं॥279॥ श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि व लक्ष्मी इन षट्कुमारी देवियों ने माता की सेवा व संस्कार से अपने पुण्य को संवर्द्धित किया॥280॥ उन देवियों ने सबसे पहले स्वर्ग से लाए गए पवित्र द्रव्यों से प्रसन्नचित्त से युक्त माता का सुगर्भ शोधन किया था॥281॥ उन देवियों में कितनी ही मंगल द्रव्य धारण कर रही थीं, कितनी ही वस्त्राभूषण आदि पहनातीं, शृंगार करतीं, कितनी ही उनकी रक्षा में तत्पर रहतीं, कोई उनके हाथ-पैरादि का मर्दन करतीं, कोई देवी उन्हें तंबूल देती॥282॥ उस समय उन माता की सेवा में नियुक्त देवियाँ धर्म भाव से युक्त आनंद के निमित्त उनका मनोरंजन किया करती थीं॥283॥ वे मधुर गान से युक्त देवियाँ प्रसन्न मुख से नृत्य आदि के द्वारा वा भिन्न-भिन्न प्रकार से माता की सेवा किया करती थीं॥284॥

सुहचिंतणं वड्ढिदं, णाणाविहा पहेलिया पुच्छीअ।
तदा मादूए णाण-खओवसमो विम्हयकरो दु।।285।।

हे जगजणणी मादू, को हवेदि धम्मवड्ढगो लोए।
एगदिक्कुमारीए, पुच्छिदं मादूए वदिदं।।286।।

तित्थयरो णियमेणं, धम्मपवट्टगो कम्मभूमीसुं।
जिणसासणपहावणा, तित्थयरं विणा संभवो ण।।287।।

भरहेरावदेसुं च, चउवीसतित्थयरा होज्ज समये।
वरकम्मभूमिविदेह-खेत्तेसु सस्सद-तित्थयरा।।288।।

थुवंता दिक्कुमारी, भासीअ सोहग्गिआ जगपुज्जा।
पुव्वदिसा व विसिट्ठा, तुमं तित्थयर-पसवणादो।।289।।

चंपगंबसोग-सत्तपण्णि-रुक्खाणं चिय ठाणं किं च।
सप्पो कं परिअंतदि, कम्मक्खयिदु-मावसियं किं।।290।।

पावुदयोण किं करदि, पाविट्ठो वद अइपसंतमादू।
अंतिम बे-अक्खराणि, समाणाणि केवलं हवेज्ज।।291।।

वे देवियाँ शुभ चिंतन की वृद्धि के लिए माता से नाना प्रकार की पहेलियाँ पूछती थीं। उस समय माता का ज्ञान का क्षयोपशम आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला था।।285।। एक दिक्कुमारी देवी ने पूछा ''हे जगजननी माता! लोक में धर्म की वृद्धि करने वाला कौन होता है?'' तब माता ने कहा-कर्मभूमियों में धर्म का प्रवर्तन करने वाले नियम से तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर के बिना जिनशासन की प्रभावना संभव नहीं है।।286-287।। भरत व ऐरावत क्षेत्रों में समय पर चौबीस तीर्थंकर होते हैं एवं उत्कृष्ट कर्मभूमि विदेह क्षेत्रों में सदा तीर्थंकर होते हैं।।288।। पुनः स्तुति करते हुए दिक्कुमारी ने कहा-हे सौभाग्यशालिनी! हे जगपूज्या! तीर्थंकर जिन को जन्म देने वाली होने से आप सूर्य को उदय करने वाली पूर्व दिशा के समान विशिष्ट हैं।।289।। पुनः पूछा हे माँ! जहाँ चंपक, आम्र, अशोक व सप्तपर्णी वृक्ष हों वह स्थान क्या कहलाता है? सर्प किसका आलिंगन करता है, कर्म क्षय के लिए क्या आवश्यक है एवं पापिष्ठ जीव पाप के उदय में क्या करता है? हे अतिप्रशांतमाता! कहो, प्रत्येक उत्तर के मात्र अंतिम दो अक्षर समान होंगे।।290-291।।

चंदमुहि-मादूए दु, पडिसाहिदं सुहसहजभावेणं।
णंदणं चंदणं तह, वंदणं कंदणं कमेणं।।292।।

दुणयाण पदीगो किं, झाणेण जदी किं करदि कम्माण।
मुणिस्स मूललक्खणं, किं मोक्खं पाविदुं करेज्ज।।293।।

तियक्खरजुदुत्तरेसु-अंतिमेगक्खर-समाणाणि होज्ज।
णयणं दहणं सहणं, जदणं कमसो पडिवक्कीअ।।294।।

आदि-अंत-दुअक्खरा, त्थी-बेपक्खवायी कमेण।
आदि-अंतं जुंजित्तु, देहपुट्ठिमस्स दववायी।।295।।

अंत-आदिं जुंजित्तु, वा तडागवायी इसुवायी किं।
तियक्खर-अण्णवायी, रमासणामं तस्स जाणह।।296।।

चंद्र के समान उज्ज्वल मुख वाली माँ ने शुभ सहजभाव से उत्तर दिया—इन सभी का उत्तर क्रमशः नंदन, चंदन, वंदन तथा क्रंदन। अर्थात् चंपकादि वृक्षों का स्थान नंदन वन कहलाता है, सर्प चंदन वृक्ष से आलिंगन करता है, कर्मक्षय के लिए वंदन आवश्यक है तथा पापी जीव पापोदय में क्रंदन करता है।।292।। पुनः किसी दूसरी देवी ने पूछा हे माँ! दो नयों का प्रतीक क्या है? ध्यान से यति कर्मों का क्या करता है? मुनि का मूल लक्षण क्या है और मोक्ष प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए? तीन अक्षर वाले इन उत्तरों में अंतिम एक अक्षर समान होना चाहिए। तब माँ ने क्रमशः उत्तर दिया—नयन, दहन, सहन व यतन। अर्थात् व्यवहार व निश्चय नय के प्रतीक नयन हैं, ध्यान से योगी कर्मों को दहन करता है। मुनि का मूल लक्षण सहन करना है और मोक्ष प्राप्ति के लिए यतन करना चाहिए।।293-294।। किसी अन्य देवी ने पूछा माँ! तीन अक्षर वाले उस अन्न का नाम बताएँ जिसके प्रारंभ के दो अक्षर स्त्री के पर्यायवाची हैं, अंतिम दो अक्षर दो पक्ष के वाची हैं। यदि प्रारंभ व अंतिम अक्षर को जोड़ें तो देह को पुष्ट करने वाला द्रव होता है, यदि अंतिम व आदि अक्षर को जोड़ा जाए तो तालाब का पर्यायवाची या इषु का पर्यायवाची बनता है। तब माँ ने कहा—उस अन्न का नाम रमास जानो। [प्रारंभ के दो अक्षर जोड़ने पर रमा आता है जो स्त्री का पर्यायवाची है, अंत के दो अक्षर जोड़ने पर मास आता है दो पक्षों को मास कहते हैं, पहले व अंतिम अक्षर को जोड़कर रस आता है, यह देह को पुष्ट करने वाला द्रव है, अंत व आदि अक्षर को जोड़कर 'सर' आता है जो तालाब का पर्यायवाची नाम है व 'शर' इषु का पर्यायवाची नाम है]।।295-296।।

तियक्खरेसु अंतेग-समं होज्ज पुच्छणे पडिवक्किदं।
घाणक्खस्स सुविसयो, किं च जोदिस-गिहा दाएज्जा किं।
ठाणं च विंतराणं, किं च अट्ठायि-णिवासो किं।।297।।

सुवासो पयासो आवासो पवासो सुवयणेहि।।298।।

उक्किट्ठ-पुण्णवंता, हे सोहग्गिआ तह मणोहारी।
आच्छणाइ पडिमंतह, मम अण्णाणतमं खयेदुं।।299।।

किं मेरूसुं एगो, पउमवायी मलहीणत्तवायी।
कहं इंदुस्स जुण्हा, अंतक्खरं समं सव्वाण।।300।।

अचलो कमलं अमलं, धवलं अइ-कंतिवंत-मादूए।
कहिदं असुहसंवरो, सुज्झाणं तच्चचिंतणेण।।301।।

चक्कि-मुक्खरयणं किं, इगजलयरो इंदवायी सद्दो।
दरिद्दाण पेयं किं, अमियं व विस्सवंदणीया।।302।।

चक्कं णक्को सक्को, तक्कं पडिमंतिदं च मादूए।
कुणदु अप्परंजणं वि, मणरंजणेण सह हे सुधी।।303।।

पुनः किसी अन्य देवी ने पूछा माँ! घ्राण का सुविषय क्या है? ज्योतिष ग्रह क्या देते हैं? व्यंतरों का निवास स्थान क्या कहलाता है? एवं अस्थायी निवास क्या है?।।297।। तीन अक्षर वाले उत्तरों में अंत का एक अक्षर समान होना चाहिए। माता ने सुवचनों से उत्तर दिया-सुवास, प्रकाश आवास और प्रवास। अर्थात् घ्राण का सुविषय सुवास है, ज्योतिष ग्रह प्रकाश देते हैं, भवनवासियों के भवन आवास कहलाते हैं और अस्थायी निवास प्रवास कहलाता है।।298।। हे सौभाग्यशालिनी, मनोहारिणी, उत्कृष्ट पुण्य शालिनी मात! मेरे अज्ञान रूपी अंधकार के क्षय के लिए मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।।299।। पाँच मेरुओं में से एक का नाम, पद्म का पर्यायवाची, मलहीनता का पर्यायवाची क्या है एवं चंद्रमा की चाँदनी कैसी होती है? सभी का अंतिम अक्षर समान होना चाहिए।।300।। अति कांति से युक्त माता ने उत्तर दिया-अचल, कमल अमल व धवल। अर्थात् एक मेरु-अचल, पद्म का पर्यायवाची कमल, मलहीनता का वाची अमल एवं चंद्रमा की चाँदनी धवल होती है। पुन कहाः तत्त्वचिंतन से अशुभ का संवर एवं सम्यक् व श्रेष्ठ ध्यान होता है।।301।। अनंतर किसी देवी ने पूछा, हे विश्ववंदनीयामाता! चक्रवर्ती का मुख्य रत्न क्या है? एक जलचर, इंद्र का पर्यायवाची शब्द एवं दरिद्रों के लिए अमृत के समान पेय क्या है?।।302।। माता ने उत्तर दिया चक्र, नक्र, शक्र व तक्र। अर्थात् चक्रवर्ती का मुख्य रत्न चक्र, जलचर नक्र, इंद्र का पर्यायवाची शब्द शक्र एवं दरिद्रों के लिए अमृत समान पेय तक्र है। उत्तर देकर माता ने कहा हे सुधी! मनोरंजन के साथ आत्म रंजन भी करना चाहिए।।303।।

बेअक्खरेसु मादू, हरिभादुं छप्पयवायि-सद्दं च।
पूयावायिं वदेज्ज, पुप्फपुव्वरूवं धणिआ य॥304॥

हली अली बली कली, कमेणं जाणेज्जा विवित्ताओ।
असुहहेदुभूदमसुह-चिंतणं सया आमुयेज्जा॥305॥

हे अइसयसुहकरणी, होज्ज आदि-दुअक्खरा णिववायी।
अंतदुअक्खरा विविण-वायी हंदि तियक्खरेसुं॥306॥

अंतादिं जुंजिदूण, माणववायी पडिहरिणामो किं।
मज्झादिं जुंजिदूण, उक्किट्ठवायी णियमेणं॥307॥

हे दिक्कण्णा सुणेह, रावणो चिय अट्ठमपडिहरी सो।
सुहि-जीवणस्स करेज्ज, खणे खणे तच्चचिंतणं च॥308॥

सेट्ठवायी वा पढम-तित्थयर-णामो किं जगजणणी दु।
णउंसयरहिद-गदी य, किं मंदिरवायिसद्दो किं॥309॥

किं च चक्किभरदेणं, णिम्माविद-पढममंदिर-णामो दु।
इत्थं पुच्छणे तदा, पुरुदेवजिणालयो कहिदो॥310॥

हे स्तुतिपात्र माता। हरि का भाई, षट्पद का पर्यायवाची शब्द, पूजावाची एवं पुष्प का पूर्व रूप, इन सभी को दो अक्षरों में बताइये॥304॥ माता ने कहा इनका उत्तर क्रम से हलि अलि, बलि व कली जानना चाहिए अर्थात् हरि का भाई हलि, षट्पद का पर्यायवाची अलि, पूजा वाची बली एवं पुष्प का पूर्व रूप कली जानना चाहिए। माता ने पुनः कहा हे विवेकयुक्ता! अशुभ के कारणभूत अशुभ चिंतन को सदा त्यागना चाहिए॥305॥ हे अतिशय सुखकरणी माता! तीन अक्षरों में उस प्रतिनारायण का क्या नाम है जिसके आदि के दो अक्षर नृपवाची, अंतिम दो अक्षर, विपिनवाची, अंतिम व आदि अक्षर के जोड़ने पर मानव का पर्यायवाची शब्द एवं मध्य व आदि अक्षर को जोड़कर उत्कृष्ट का पर्यायवाची शब्द होता है?॥306-307॥ माता ने कहा हे दिक्कुमारी सुनो वह अष्टम प्रतिनारायण रावण है। ये प्रथम दो अक्षर राव नृपवाची, अंतिम दो अक्षर वन विपिनवाची, अंतिम व आदि अक्षर जोड़ने पर नर मानववाची एवं मध्य व आदि अक्षर वर उत्कृष्टवाची हैं। माता ने पुनः संबोधित करते हुए कहा सुखी जीवन के लिए क्षण-क्षण तत्त्वचिंतन करना चाहिए॥308॥ किसी अन्य देवी ने पुनः पूछा हे जगजननी! श्रेष्ठ का पर्यायवाची व प्रथम तीर्थंकर का क्या नाम है? नपुंसकों से रहित गति कौन-सी है एवं मंदिरवाची शब्द क्या है? चक्रवर्ती भरत के द्वारा बनवाये गए प्रथम मंदिर का क्या नाम है? इस प्रकार पूछने पर माता ने उत्तर दिया-पुरुदेवजिनालय अर्थात् श्रेष्ठ का पर्यायवाची या प्रथम तीर्थंकर का नाम-पुरु, नपुसंक वेद से रहित गति-देव, मंदिर का पर्यायवाची नाम-जिनालय एवं भरत-चक्रवर्ती द्वारा बनवाया प्रथम मंदिर का नाम पुरुदेवजिनालय था॥309-310॥

तडवायी सरिदाए, किं भूवदिस्स तह देदि किं।
को धम्मप्पवट्टगो, पुच्छणे तित्थयरो वदिदो।।311।।

किं हवेदि अग्गाउं, दिवायरो किं च पसारेदि तहा।
केण गहदि आहारं, मुणी कहं पणमेज्ज जिणं च।।312।।

इगसद्दे वद मादू, पडिसाहिदं बद्धकरंजलीए।
सहावेणं संतुट्ठ - अइसय - पुण्णवंत - मादूइ।।313।।

को पज्जलेदि जीवा, कं कणदि सोहग्गिअ-इत्थिकरेसु।
किं करदे सय सेवं, संभालदि कं डगमगंतं।।314।।

तित्थयरस्स मादूइ, बुद्धि-आदी वि तित्थयर-विड्ढीइ।
सुहंसुविड्ढीए जह, वड्ढेदि जुण्हा अवि तहेव।।315।।

तित्थयर-बालो उदर-वियार-रहिद-मादु-गब्भे सुहेण।
वड्ढेज्ज जह कलिआसु, सणिअं सणिअं गंधं तह हु।।316।।

किसी अन्य देवी ने पूछा हे माता! नदी का तटवाची कौन सा शब्द है? राजा के लिए प्रजा क्या देती है एवं धर्म प्रवर्तक कौन है? इसका उत्तर माता ने एक शब्द में दिया–तीर्थंकर। अर्थात् सरिता का तट-तीर्थ, प्रजा राजा के लिए देती है–कर और धर्मप्रवर्तक-तीर्थंकर।।311।। पुनः किसी दिक्कुमारी देवी ने पूछा हे माता! आगे वाली आयु क्या कहलाती है; सूर्य किसका प्रसार करता है, मुनि किसके द्वारा आहार ग्रहण करते हैं एवं जिनेंद्र प्रभु को कैसे नमस्कार करना चाहिए? हे माता! एक शब्द में उत्तर दीजिए। तब स्वभाव से संतुष्ट अतिशय पुण्यवान् माँ ने उत्तर दिया-बद्धकरांजलि। अर्थात् आगे की आयु-बद्ध, सूर्य प्रसारित करता है-कर (किरण), मुनिराज आहार ग्रहण करते हैं अंजलि से और भगवान् को नमस्कार करना चाहिए बद्धकरांजलि से (हाथ जोड़कर)।।312-313।। जीव को कौन जलाता है? सौभाग्यशाली स्त्री के हाथों में क्या आवाज करता है, सदा सेवा कौन करता है तथा डगमगाते हुए को कौन सम्हालता है? इस प्रकार एक देवी के पूछने पर माता ने इसी प्रश्न में छिपे उत्तरों को दिया-कोप, कंकण, किंकर एवं कंड (कांड)। जीव को क्रोध जलाता है। सौभाग्यशाली स्त्रियों के हाथों में कंकण (कंगन) आवाज करता है। सदा सेवा किंकर करता है एवं डगमगाते हुए को कांड (डंडा) सम्हालता है।।314।। तीर्थंकर की वृद्धि से तीर्थंकर की माता की बुद्धि आदि भी उसी प्रकार हो रही थी जैसे चंद्रमा की वृद्धि से चाँदनी की वृद्धि होती है।।315।। उदर विकार से रहित माता के गर्भ में तीर्थंकर बालक सुखपूर्वक उसी प्रकार वृद्धिंगत हो रहा था जिसप्रकार कलियों में धीरे-धीरे गंध वृद्धिंगत होती है।।316।।

गब्भत्थ-सिसु-विड्ढीइ, पजाए आणंद-हरिसुच्छाहो।
वड्ढेज्ज समुद्दजलं, चंदविड्ढीए जह तहेव॥317॥

वसंततिलका छंद

रायाइ-सव्व-सुजणा चिय सामयंता
जम्मस्स लोयसुगुरुस्स जवीअ पुण्णे।
अग्घाडिदा हि सुहदा अहिलास-सव्वा
रायेण-संजुद-कुडुंब-जणेहि ताए॥318॥

गर्भस्थ शिशु की वृद्धि से प्रजा में आनंद हर्ष व उत्साह उसी प्रकार बढ़ रहा था जिस प्रकार चंद्रमा की वृद्धि से समुद्र का जल वृद्धि को प्राप्त होता है।।317।।

राजा आदि सभी लोग तीनों लोकों के गुरु तीर्थंकर प्रभु के जन्म की प्रतीक्षा करते हुए पुण्य में अपना समय व्यतीत कर रहे थे। उस समय राजा सहित सभी लोग उन माँ सुनंदा की सुखद सभी अभिलाषाएँ पूरी करते थे।।318।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में स्वर्गावतरण को कहने वाला षष्टम सर्ग पूर्ण हुआ।

तीर्थंकर बालक का सुमेरु पर्वत पर जन्माभिषेक

सत्तम-सग्गो

णवमासासु गलियेसु, दिणयर-उदयोव्व णिसह-पव्वयादु।
सुत्तीए हु मुत्ता व्व, तित्थयरबालं च पसवीअ॥319॥

माह-किण्ह-बारसम्मि, पुव्वासाढे सुहविस्सजोगम्मि।
तिणाणेहिं सोहिदं, तिलोयसेट्ठ-पुत्तं लहीअ॥320॥

इगपुव्वलक्खसमहिद-णवकोडि-सागरोवमे गलिये य।
सीयलणाहो जम्मो, पुप्फदंतस्स उप्पत्तीइ॥321॥

वरिसविअ-रयणरासी, णिरंतरं चिय पणरसमासंतं।
छलेण जिणदंसणस्स, आगद-सग्गोत्तम-सुणिहीव॥322॥

तदा तम्हि देसम्मि दु, तिव्वलोही ईसालू णो को वि।
णिद्धणो जायगो णो, सव्वा उदारा संतुट्ठा॥323॥

णो को वि धणाकंखी, तत्थ णेव कस्स वि किंचि कंखा य।
जणा मेत्तं कंखीअ, दंपत्तिजिणाण दंसणं दु॥324॥

इस प्रकार नव मास व्यतीत होने पर निषध पर्वत से सूर्य के उदय के समान व सीप से मोती के समान तीर्थंकर बालक का जन्म हुआ॥319॥ राजा दृढ़रथ व रानी सुनंदा ने माघ कृष्ण द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में, शुभ विश्वयोग में तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान) से सुशोभित, तीनों लोकों में श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त किया॥320॥ श्री पुष्पदंत तीर्थंकर के जन्म के एक लाख पूर्व अधिक नौ करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री शीतलनाथ जिनेंद्र का जन्म हुआ॥321॥ निरंतर पंद्रह माह तक बरसती हुई वह रत्नराशि ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो जिनेंद्र प्रभु के दर्शन के लिए छल से स्वर्ग की उत्तम निधि ही आई हो॥322॥ उस समय उस देश में कोई भी तीव्र लोभी, ईर्ष्यालु, निर्धन अथवा याचक नहीं था। सभी लोग उदार व संतुष्ट थे॥323॥ वहाँ कोई भी धन की आकांक्षा नहीं करता था और किसी के कोई अन्य भी आकांक्षा किंचित् भी नहीं थी। उस समय लोग मात्र राजा दृढ़रथ व माता सुनंदा इन दंपत्ति अथवा श्री तीर्थंकर जिन के दर्शन की आकांक्षा कर रहे थे॥324॥

अइआणंदिया-पइडी, पयाए वड्ढीअ अच्चंत-हरिसो।
विम्हयकारग-देवा, सव्वपावजिद-विहु जम्मादु।।325।।

तित्थयर जम्मादो दु, सुह संती खणमेत्तस्स तिलोए।
अचिंतो हवेदि महापुरिसस्स पहावो तिलोए।।326।।

सोहम्मिंदेण ओहि-णाणेणं च आसणकंवणादो।
विआणिदं पहुजम्मं, हिअय-विगासगस्स भव्वाण।।327।।

कप्पेसु घंटणादो, सीहणादो जोदिस-विमाणेसुं।
विंतरेसु पटहरवो, संखणादो भोमज्जेसुं।।328।।

पुण सुरेहि आसणादु, उट्ठिय सत्तपदं ताइ दिसाए।
गमित्ता वसुअंगेहि, णमिदो जिणिंदो भत्तीए।।329।।

सोहम्मिंदं पस्सिय, तदा पुच्छिदं सचि-इंदाणीए।
भो देवरायणाहो, तुम्हं कं वंदेसि णमेसि।।330।।

णो वीयरायदेवो, णेव णिग्गंथगुरू दिस्सदि अत्थ।
णेव को वि परमेट्ठी, णो चेइय-चेइयालयाणि।।331।।

उस समय प्रकृति अति आनंदित थी। प्रजा में अत्यंत हर्ष वृद्धिगत हो रहा था। सर्व पापों के जीतने वाले प्रभु के जन्म से देव आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे।।325।। तीर्थंकर प्रभु के जन्म से क्षण मात्र के लिए तीनों लोकों में सुख व शान्ति हो गई थी। सच है तीनों लोक में महापुरुष का प्रभाव अचिंत्य होता है।।326।। तब सिंहासन कंपायमान होने से अवधिज्ञान पूर्वक इंद्र ने जान लिया कि भव्यों के हृदय को विकसित करने वाले तीर्थंकर प्रभु का जन्म हुआ है।।327।। कल्पवासी देवों के विमानों में घंटा नाद, ज्योतिष विमानों में सिंह नाद, व्यंतर देवों के आवासों में पटह के शब्द और भवनवासी के आवासों में शंख नाद होने लगा था।।328।। पुनः देवों ने आसन से खड़े होकर उसी दिशा में सात कदम जाकर श्री जिनेंद्र भगवान् को भक्तिपूर्वक अष्टांग नमस्कार किया।।329।। सौधर्मेन्द्र को नमस्कार करता देख शचि इंद्राणी ने पूछा हे देवराज इंद्र! आप किसकी वंदना कर रहे हैं, किसको नमस्कार कर रहे हैं? यहाँ कोई वीतरागी दिखाई नहीं देते। न निर्ग्रन्थ गुरु, न कोई भी परमेष्ठी और न ही कोई चैत्य- चैत्यालय दिखाई देता है।।330-331।।

संकाणिवित्तीइ सचि-इंदाणीए वदिदं इंदेणं।
पाणप्पिया तुमं किं, ण णासि जंबूदीव-भरहे।।332।।

सीयलणाहो दसमो, तित्थयरो मलयस्स भद्दिलम्मि य।
जम्मीअ तिलोयगुरू, वयं दंसणत्थं चलेज्जा।।333।।

जिणजम्ममहुच्छवस्स, णिग्गदा तदा सत्तमहासेणा।
कमेण सुरिंदाणाइ, इंद-महिमा-दंसावंता।।334।।

गय-हय-रह-गंधव्वा णच्चंगणा-पाइक्क-उसहा तह।
महणीगाणि गंभीर-रवं कुव्वंताणि सोहीअ।।335।।

आभिओग-जादीए, एरावदो बालग-णाम-देवो।
धवलुत्तुंग-गजिंदो, एगलक्खजोयणपमाणं।।336।।

गजिंदस्स हु बत्तीस-मुहा पत्तेयमुहे चउदंताणि।
पत्तेयं दंते इग-सरो तम्हि कमलवणखंडो।।337।।

पत्तेयं वणखंडे, बत्तीस-महापउमाणि रम्माणि।
जोयण-पमाण-पउमे, एगिग-णाडयसाला होज्ज।।338।।

पत्तेयं सालाए, बत्तीस-णच्चंगणा णच्चंता।
णवरसजुदा भत्तीइ, तित्थयर-गुणा गायंता य।।339।।

शचि इंद्राणी की शंका की निवृत्ति के लिए इंद्र ने कहा हे प्राणप्रिय! क्या आप नहीं जानती, जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में मलय देश की भद्दिलनगरी में तीन लोक के गुरु दसवे तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान् का जन्म हुआ है। हमें दर्शन के लिए शीघ्र चलना चाहिए।।332-333।। तभी सुरेंद्र सौधर्म की आज्ञा से जिनेंद्र प्रभु के जन्म महोत्सव के लिए इंद्र की महिमा को दिखाती हुई क्रम से सात महासेनाएँ निकलीं।।334।। हाथी घोड़ा, रथ, गंधर्व, नृत्यांगनाएँ, पदाति तथा बैल ये महा अनीक गंभीर शब्द करती हुई सुशोभित हो रही थीं।।।335।। अभियोग्य जाति का बालक नामक देव वह ऐरावत गजेंद्र धवल, उत्तुंग व एक लाख योजन प्रमाण था।।336।। उस गजेंद्र के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में चार दाँत, प्रत्येक दाँत पर एक सरोवर, प्रत्येक सरोवर में कमल वन खंड, प्रत्येक वनखंड में सुंदर बत्तीस महाकमल होते हैं। प्रत्येक कमल एक योजन प्रमाण वाला होता है। उस प्रत्येक कमल में एक-एक नाट्यशाला होती है। प्रत्येक नाट्यशाला में तीर्थंकर के गुण गाती हुई एवं भक्तिपूर्वक नव रसों से युक्त नृत्य करती हुई बत्तीस नृत्यांगनाएँ होती हैं।।337-339।।

पट्टविदं सुरिंदेण, सचि-इंदाणीइ सह दुरुहिय तम्मि।
बहुमहाविहवजुदेण, वट्टेणं अणेगदेवेहि।।340।।

आयासो सुपूरिदो जयजयघोसेहि तदा देवाणं।
महुरगंभीररवेहि, चिअ दुंदुहि-आइ-वज्जाणं।।341।।

अणंतरं पहुच्चित्तु, तत्थ देवेहि पदक्खिणा करिदा।
णयरीए भत्तीए, पविसीअ खलु रायभवणम्मि।।342।।

पुण अइ-उच्छाहेणं, सचीए पविसिदं पसूदिगिहम्मि।
तित्थयरबालेण सह, दंसणं करीअ जणणीए।।343।।

अइ-पेम्मेण हरिसेण, पुलअंत-सचीए पदक्खणिदं दु।
णमिय जिणमणुरागेण, थुदिं कुव्वीअ दु मादूए।।344।।

हे पुण्णमंत-जणणी, सोहग्गिआ सव्वादरणीया च।
तुमं मंगल्ला विस्सकल्लाणकारगा सुपुज्जा।।345।।

अदिट्ठसचीए तदा, संथुदे किच्चा विक्किरियाए दु।
मायामयि-णिद्दाए, लिसाविदा जिणिंदमादू य।।346।।

णिहाए अण्णवालं-पुण ठविदूणं मादु-अंतियम्मि दु।
होज्ज आदयाण-सची, उद्धुसियो हु करेहि बालं।।347।।

ऐसे उस ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर अनेक देवों से घिरे हुए, बहुमहावैभव से संयुक्त शचि इंद्राणी के साथ सुरेंद्र सौधर्म ने प्रस्थान किया।।340।। तब दुंदुभि आदि वाद्यों के मधुर गंभीर शब्दों से एवं देवों द्वारा किए गए जय-जयघोष से संपूर्ण आकाश पूरित हो गया था।।341।। अनंतर वहाँ पहुँचकर देवों ने भक्तिपूर्वक नगरी की प्रदक्षिणा की एवं राजमहल में प्रवेश किया।।342।। पुनः अति उत्साह से शचि ने प्रसूतिगृह में प्रवेश किया तथा तीर्थंकर बालक के साथ माता सुनंदा के भी दर्शन किए।।343।। अति प्रेम व हर्ष से रोमाञ्चित शचि इंद्राणी ने सर्वप्रथम प्रदक्षिणा की, फिर जिनेंद्र बालक के अनुराग से उन्हें नमस्कार करके माता की स्तुति की।।344।। हे पुण्यवान्, सौभाग्यशालिनी माता! सभी के द्वारा आदरणीय माता! आप मंगलकारी, विश्वकल्याण- कारक, सुपूज्य हैं।।345।। तब विक्रिया से स्वयं को अदृष्ट रखते हुए शचि ने माता की स्तुति कर श्री तीर्थंकर जिनेंद्र की माता को मायामयी निद्रा में सुला दिया।।346।। पुनः माता के निकट माया से अन्य बालक को रखकर जिनबालक को हाथों से ग्रहण करती हुई शचि अत्यंत रोमांचित हो रही थी।।347।।

पुण-पुण अवअक्खीअ दु, संफासीअ जिग्घीअ इंदाणी।
णो होही संतुट्ठा, जिणबालं च आलिंगंता॥348॥

सुबालसहिदगच्छंत - इंदाणीए असीम - आणंदं।
कहिदुं को सक्केज्जा, तदा चिय तिलोयणाहेणं॥349॥

छत्त-चमर-कलस-वियण-धय-सुपइट्ठ-दप्पण-भिगारेहिं।
भत्तीइ मंगलदव्वजुद-देवी अग्गे चलीअ दु॥350॥

पउमदलम्मि इंदुणा, पक्खित्त-अइ-सुंदर-जलबिंदुं व।
चक्किणा चक्करयणं, उच्चट्ठाणे संठविदं व॥351॥

पुण ठविदो जिणबालो, करतले जिणभत्तिजुद-सुरिंदस्स।
सोहीअ उदयाचले, रवीव विहू करतले तस्स॥352॥

सहस्सणयणं रयित्तु, पस्सीअ आयरेण अइभत्तीइ।
पुण पुण तिलोयणाहं, धम्मपवट्टगं च मुणिंदं॥353॥

अणेगविह-थुदिं कडुअ, अणंतरं सगंकम्मि जिणबालं।
धरिय होही तप्परो, सुमेरुपव्वयम्मि गमणस्स॥354॥

सचीए सह सुरिंदो, जिणसिसुं धरंतो एरावदम्मि।
विज्जीअ अण्णसुरा वि, सगविमाणे जयघोसंता॥355॥

वह इंद्राणी पुनः-पुनः जिन बालक को देख रही थी, उसका स्पर्श कर रही थी, सूंघ रही थी और आलिंगन करते हुए संतुष्ट नहीं हो रही थी॥348॥ तीन लोक के नाथ जिनबालक सहित जाती हुई इंद्राणी के असीम आनंद को कहने में कोई समर्थ नहीं था॥349॥ छत्र, चँवर, कलश, बीजना (पंखा), ध्वज, सुप्रतिष्ठ (स्वास्तिक), दर्पण और झारी इन आठ मंगलद्रव्यों से युक्त देवियाँ भगवान् के आगे-आगे चल रही थीं॥350॥ पुनः इंद्राणी ने चंद्रमा द्वारा कमल दल पर प्रक्षिप्त जलबिंदु के समान अथवा चक्रवर्ती द्वारा उच्चस्थान पर स्थापित किए गए चक्ररत्न के समान जिनभक्ति से युक्त सुरेंद्र के हाथ पर जिनबालक को स्थापित किया। उस सौधर्म इंद्र के हाथ में भगवान् ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो उदयाचल पर सूर्य ही सुशोभित हो रहा हो॥351-352॥ तब इंद्र ने हजारों नेत्र बनाकर अति आदर व भक्ति से पुनः पुनः मुनियों में इंद्र, धर्मप्रवर्तक, त्रिलोकीनाथ को देखा॥353॥ अनेक प्रकार से स्तुति कर अनंतर अपनी गोद में जिन बालक को लेकर सुमेरुपर्वत पर जाने के लिए तत्पर हुआ॥354॥ जिनबालक को गोद में लिए सौधर्म इंद्र, शचि इंद्राणी के साथ ऐरावत हाथी पर विराजमान हुआ। अन्य सभी देव भी जय घोष करते हुए अपने-अपने विमान में विराजमान हुए॥355॥

संचीअ पुण्णरासिं, सव्वदेव-देवंगणा भत्तीइ।
पुव्वबंधिदबहुपाव-रासिं पक्खालीअ थुदीइ॥356॥

सपरिणामविसुद्धीइ, सव्वा करीअ जिणत्थुदिं इत्थं।
जगजोदी जगणाहो!, तुमं धम्मतित्थपवट्टगो॥357॥

मुत्तित्थि-कंतो होज्ज, रायाइ-वियारं खविदूण तुमं।
उत्तुंगुदयाचलोव्व, अप्पणाणदिणयरोदयस्स॥358॥

सगप्पसुद्धसहावं, लहिस्ससि तम्हा तं वयं पणमो।
पावगिरिं च फोडिदुं, वज्जोव्व तुमं हे जिणिंदो!॥359॥

तुमं सयंबुद्धो खलु, केवलणाणक्केणं समत्थो य।
अण्णाणतमं हरिदुं, तं णमो णमो तुज्झ जिणस्स॥360॥

तुमं भवसायरादो, णित्थारिदुं दु उक्किट्ठ-तरणीव।
सायरे रयणाणीव, अणंतगुणा आसयंते दु॥361॥

तं सुगुणा चिंतंतो, तव कुणमो थुदिं भत्तिरायेण।
तव गुणणामत्थुदी, णे देदि णिस्सीमाणंदं॥362॥

जिन भक्ति से सभी देव व देवांगनाओं ने बहुत पुण्यराशि का संचय किया। जिनेंद्र प्रभु की स्तुति से पूर्व में बांधी हुई बहुत पाप राशि को प्रक्षालित अर्थात् नष्ट किया॥356॥ पुनः सभी ने स्वपरिणामों की विशुद्धि से इस प्रकार जिनेंद्र भगवान् की स्तुति की हे जगज्योति! हे जगन्नाथ! आप धर्मतीर्थ प्रवर्तक हैं॥357॥ हे प्रभु! आप रागादि विकारों का क्षय करके मुक्ति रूपी स्त्री के कांत होंगे। आप आत्मज्ञान रूपी सूर्य के उदय के लिए उत्तुंग उदयाचल के समान हो॥358॥ हे जिनेंद्र प्रभु! आप पाप रूपी पर्वत को फोड़ने के लिए वज्र के समान हो। आप स्वात्मा के शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करोगे इसलिए हम आपको प्रणाम करते हैं॥359॥ हे प्रभु! आप स्वयंबुद्ध हो, केवलज्ञान रूपी सूर्य के द्वारा अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए समर्थ हो, अतः जिनेंद्र प्रभु आपके लिए नमस्कार हो, नमस्कार हो॥360॥ आप संसार रूपी सागर से पार करने के लिए उत्कृष्ट तरणी के समान हो। जिस प्रकार सागर में रत्न होते हैं (नाव) उसी प्रकार अनंत गुण आपका आश्रय लेते हैं॥361॥ इसलिए आपके सम्यक् गुणों का चिंतन करते हुए हम भक्ति के अनुराग से आपकी स्तुति करते हैं। आपके गुण व नाम स्तुति हमें निःसीम आनंद देती है॥362॥

जह अक्कदंसणेणं, पउमाइ-पुप्फाइं दु विहसंते।
तह तव दंसणेण, भव्वा अइ-पफुल्लिदा होंति।।363।।

पुण देवराय-सोहम्मिंदेण इंगिदं चिय गमणेदुं।
पंडुगसिलं पडि तदा, भत्तीए जयघोसंतेण।।364।।

देविंदस्स सुहंके, जिणबालो सुसोहिदो अच्चंतो।
आयासम्मि चंदोव्व, सुदंसणम्मि चिय चूलिगा व।।365।।

धारीअ दु ईसाणो, छत्तं जिणुवरि चमराइं धुणीअ।
सणक्कुमार-माहिंद-देवा य सगपावक्खयस्स।।366।।

समारोहं पस्सित्तु, विहवं तं अण्णमिच्छाइट्ठी तु।
होही सम्माइट्ठी, जिणसासणे सद्धावंता।।367।।

अणंतरं पहुप्पीअ, णवणउदिसहस्सजोयणुत्तुंगे।
तम्मि सुदंसणम्मि चिय, कोलाहलियो-देवविंदो।।368।।

जस्स भद्दसालवणे, णंदण-सोमणस-पंडुगवणेसुं।
रयणमणिकंतिजुदाणि, सुसोहिद-चेइयालयाइं।।369।।

पंडुग-पंडुकंबला, सिला कमेण ईसाणग्गेईसु।
णेरई-वायव्वासु, रत्ता रत्तकंबला जत्थ।।370।।

सूर्य के दर्शन से जिस प्रकार कमल आदि पुष्प खिल जाते हैं, उसी प्रकार आपके दर्शन से भव्य अति प्रफुल्लित होते हैं।।363।। पुनः तभी देवराज सौधर्मेंद्र ने भक्तिपूर्वक जयघोष के साथ पांडुकशिला की ओर चलने का इशारा किया।।364।। देवेंद्र की शुभ गोद में जिनबालक अत्यंत सुशोभित होता हुआ ऐसा लग रहा था मानो आकाश में चंद्रमा ही सुशोभित हो रहा हो।।365।। ईशान इंद्र जिनेंद्र भगवान् पर सफेद छत्र धारण किए हुए था एवं अपने पापों के क्षय के लिए सनत्कुमार व माहेंद्र देव भगवान् पर श्वेत चँवर ढोर रहे थे।।366।। उस समारोह एवं वैभव को देखकर अन्य मिथ्यादृष्टि देव सम्यग्दृष्टि, जिनशासन में श्रद्धावान् होने लगे थे।।367।। अनंतर अत्यंत कोलाहल करता हुआ देवों का समूह निन्यानवे हजार योजन उत्तुंग उस सुदर्शन मेरु पर जा पहुँचा, जिसके भद्रसाल वन, नंदन वन, सौमनस वन व पांडुक वन पर रत्नमय कांति से युक्त चैत्यालय सुशोभित हो रहे थे।।368-369।। जहाँ ईशान, आग्नेय, नैऋत्य एवं वायव्य दिशा में क्रमशः पांडुक, पांडुकंबला, रक्ता व रक्तकंबला नामक शिलाएँ सुशोभित हो रही थीं।।370।।

भरद-सुपच्छिमविदेह-एरावद-पुव्वविदेह-खेत्ताण।
कमेण तित्थयराणं, हवेदि दु सुहयरमहिसेगं।।371।।

इंदेण देवेहि सह, पदक्खिणित्ता सुदंसणं मेरुं।
अइआणंदेण तस्स, भाले विरायिदो जिणिंदो।।372।।

पंडुगसिला पवित्ता, मणुण्णा रमणीया य वट्टा सा।
वसुभूमि-सिद्धसिला व्व, सुंदर-अद्धचंदायारो।।373।।

सयजोयण-आयामी, तस्सद्ध वित्थिण्णा चिय सिला सा।
अट्ठजोयणुच्छियो य, मणोहरा जिणवरुद्दिट्ठा।।374।।

जिणबालधारणादो, णिम्मल-पुज्ज-पवित्तस्स सा हंदि।
सुहसिला जिणजणणीव, पूदा उत्तमा य भासीअ।।375।।

उसहजिणवरस्स उहय-पस्सभागम्मि णंदा सुणंदा य।
पंडुगसिलाए तिण्णि-णिम्मल-आसणाणि सोहीअ।।376।।

मज्झे बहुमुल्ल-सेट्ठ-सीहासणं जिणवराहिसेगस्स।
तस्स उहयपासेसुं, भद्दासणाणि इंदाणं च।।377।।

सोहम्मीसाणाणं, सुणिच्छिदाणि पूदफडिगमयाणि य।
अहिसेगं कुव्वेदुं, सव्वदा तित्थयरबालस्स।।378।।

पांडुक शिला पर भरत क्षेत्र के, पांडुकंबला पर पश्चिम विदेह क्षेत्र के, रक्ता शिला पर ऐरावत क्षेत्र के तथा रक्तकंबला शिला पर पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का सुखकर अभिषेक होता है।।371।। इंद्र ने देवों के साथ सुदर्शन मेरु की प्रदक्षिणा की और उस मेरु के भाल पर अति आनंद के साथ श्री जिनेंद्र भगवान् को विराजित किया।।372।। वह पांडुक शिला अति पवित्र, मनोज्ञ, रमणीया, गोल, सुंदर एवं अष्टम भूमि सिद्धशिला के समान अर्द्धचंद्राकार थी।।373।। उस मनोहर पांडुक शिला का आयाम 100 योजन, विस्तार उसका आधा अर्थात् 50 योजन एवं उत्सेध 8 योजन, श्री जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कहा गया है।।374।। वह शुभ शिला निर्मल, पूज्य, पवित्र जिन बालक को धारण करने से जिन जननी के समान पवित्र व उत्तम प्रतिभासित हो रही थी।।375।। पांडुक शिला पर क्रमशः तीन आसन ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे श्री ऋषभनाथ भगवान् के दोनों पार्श्वभाग में नंदा व सुनंदा सुशोभित होती थीं।।376।। मध्य में श्री जिनेंद्र प्रभु के अभिषेक के लिए बहुमूल्य श्रेष्ठ सिंहासन विराजमान था तथा उसके दोनों पार्श्वभागों में इंद्रों के लिए भद्रासन विराजमान थे।।377।। वे दोनों पवित्र स्फटिकमय भद्रासन तीर्थंकर बालक के अभिषेक करने के लिए सौधर्मेंद्र व ईशानेंद्र के लिए सुनिश्चित थे।।378।।

जहवि सस्सद-पवित्ता, तहवि पक्खालिदा पंडुगसिला हु।
इंदेहिं बहुवारं, खीरोव्व खीरसिंधु-जलादु।।379।।

ठविद-मंगलदव्वाणि, भासीअ अट्ठगुणोव्व सिद्धाणं।
सो लहदि वसुगुणा जो, करदि होदि जस्स ण्हाणमत्थ।।380।।

बहुविहसुवज्ज-कोलाहलेण पूरिदा सव्वदिसिविदिसा।
णच्चंत-णच्चंगणा-णिअरेहि उच्छव-दंसगेहि।।381।।

महाकालगुरुद्दाम - धूवधूमो उड्डियो तदा तत्थ।
जिणाहिसेगं करिदुं, उच्छाहि-मेहोव्व भासीअ।।382।।

पुण्णकिरियं पस्सित्तु, भव्वाण जिणहिसेगस्स भासीअ।
सगमुहकिण्हं किच्चा, गच्छंतपावकम्माणि इव।।383।।

वसुदव्वसहिद-अग्घं, तत्थ खिविदं चिय देविणिअरेहिं।
तदा महासुहमंडव-विण्णासं किदं उच्छवस्स।।384।।

जत्थ सव्वसंसारी, अबाहिद-रूवेण खलु चिट्ठिदुं च।
तित्थयरं वंदंता, थुवंता पुज्जंता सक्का।।385।।

अणंतरं पारंभिय, विहिं कडुअ उच्छाहि-सुररायेण।
गहिदं दु पढमकलसं, उत्तम-ईसाणेण विदियं।।386।।

यद्यपि वह पांडुकशिला शाश्वत पवित्र थी तद्यपि इंद्रों ने क्षीर के समान क्षीर सागर के जल से उसका बहुत बार प्रक्षालन किया।।379।। वहाँ पर स्थापित मंगल द्रव्य सिद्धों के अष्ट गुणों के समान ही प्रतिभासित हो रहे थे। जिसका इस पांडुक शिला पर न्हवन होता है अथवा जो यहाँ न्हवन करता है वह अष्ट गुणों को प्राप्त करता है।।380।। उस समय सभी दिशा व विदिशा बहुत प्रकार के वाद्ययंत्रों के कोलाहल, नृत्य करती हुई नृत्यांगनाओं के समूह व उत्सव को देखने वालों से पूरित थीं।।381।। उसी समय वहाँ महाकालागुरु नामक उड़ा हुआ उत्कृष्ट धूप का धुआँ जिनाभिषेक करने के लिए उत्साही मेघ के समान प्रतिभासित हो रहा था।।382।। अथवा वह धुआँ ऐसा लग रहा था जैसे भव्यों की जिनाभिषेक की पुण्य क्रिया को देखकर उनके पाप कर्म अपना मुख काला करके जा रहे हों।।383।। वहाँ देवों के समूह ने आठ द्रव्यों युक्त अर्घ्य समर्पित किया। तभी उत्सव के लिए देवों ने बहुत बड़े शुभ मंडप की रचना की। जहाँ तीर्थंकर की वंदना, स्तुति व पूजा करते हुए सभी संसारी जीव परस्पर बाधा न देते हुए बैठ सकते थे।।384-385।। तदनंतर उत्साही देवराज के द्वारा प्रारंभिक विधि को करके प्रथम कलश ग्रहण किया गया तथा दूसरा कलश उत्तम ईशानेंद्र ने लिया।।386।।

वसुजोयण-गंभीरं, उदरे चउजोयण-बाहल्लजुदं।
इगजोयणमुहवंतं, रयणसुवण्णमयं सुरम्मं।।387।।

खीरसायरजलेणं, पूरिद - अट्ठोत्तरसहस्स - घडेहि।
जम्माहिसेगुच्छवो, आढविदो जयजयरवेहिं।।388।।

ण्हवंतो सहस्स भुजाजुदिंदो सोहिदो कप्पदुमं व
कोडिदेवेहि करिदो, अच्चंतकोलाहलो तदा।।।389।।

आयासगंगा व्व वा, अक्कविमाणस्स पयासपुंजोव्व।
बहुथूलखीरधारा, तित्थयर - बालम्मि पडंता।।390।।

जिणाहिसेग-कुव्वंत-गंगा-सिंधूणं पडिप्फद्धा व्व।
खीरोदहि-जलधारा, भासीअ जिणवरबालोवरि।।391।।

अहिसेगजलधाराइ, मेरु - जोदिसमंडल - मच्छादिदं।
सिद्धाण देंति अग्घं, इव जिणहिसेग-छलेण सुरा।।392।।

जह वि सहावेण परम-पवित्तो जिणतित्थयरो तहवि।
सगमालिण्णं खयिदुं, ण्हाणं करिदं इंदसुरेहि।।393।।

तित्थयरबालफासिद-जलं खमं जगं पवित्तं करिदुं।
सगपवित्त भावणाइ, सव्वेहि अवगाहिदं तम्हि।।394।।

वह रत्नमय सुरम्य कलश आठ योजन गहरा, उदर में चार योजन चौड़ा एवं मुख पर एक योजन चौड़ा था।।387।। क्षीर सागर के जल से भरे हुए उपरिम प्रमाण वाले एक हजार आठ कलशों से जय-जयकार ध्वनि के साथ जन्माभिषेक महोत्सव प्रारंभ किया गया।।388।। उसी समय जयजयकार बोलते हुए करोड़ों देवों ने भी अत्यंत कोलाहल किया। अभिषेक करते हुए हजार भुजाओं से युक्त देवराज सौधर्म इंद्र कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हो रहा था।।389।। तब तीर्थंकर बालक पर पड़ती हुई बहुत मोटी क्षीर धारा ऐसी लग रही थी मानो आकाश गंगा ही हो अथवा सूर्य विमान का प्रकाशपुंज ही हो।।390।। जिन बालक के ऊपर क्षीरोदधि के जल की धारा ऐसी प्रतिभासित हो रही थी मानो गंगा व सिंधु नदी प्रतिस्पर्द्धा ही कर रही हों।।391।। अभिषेक के जल की धारा से संपूर्ण ज्योतिष मंडल ही आच्छादित हो गया था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो देव जिनाभिषेक के बहाने सिद्धों को अर्घ्य ही दे रहे हों।।392।। यद्यपि तीर्थंकर जिन स्वभाव से परम पवित्र हैं तद्यपि इंद्र देवों ने अपने मालिन्य (दोषों) के क्षय के लिए भगवान् का न्हवन किया था।।393।। तीर्थंकर बालक से स्पर्शित जल जगत् को पवित्र करने में समर्थ था अत: अपनी पवित्र भावना से सभी ने उसमें अवगाहन किया।।394।।

सुद्धभावेहिं कडुअ, अहिसेग-मुच्चरीअ संतिमंतं।
गंधोदगं वंदित्तु, धारीअ भालुवरि सद्धाइ॥395॥
तियपदक्खिणं किच्चा, दिव्वदव्वेहि तिजोगेहिं जिणं।
पुज्जीअ तिविहकम्मं, णासित्तु होदुं जगसामी॥396॥
सव्वाणिट्ठ-णासगा, मंगल्ला हिययरा दु जिणपूया।
परमपुण्णदायगा य, सव्वपावक्खयिदुं सक्का॥397॥
खीरसायरजलेणं, मेरुम्मि जस्स अहिसेगं करीअ।
इंदसुरेहि जगगुरू, सिरिसीयलणाहो सो जयदु॥398॥

वनवासिका छंद

जम्महिसेगो सय सुहयारी, भावविसुद्धीइ विमल-हेदू।
देवसुरेहिं अदिसय-पुण्णं, संचिणिदं वा अइहरिसेणं॥399॥
मोह-खयेदुं विहिजिद-होदुं, सीद-मिअंगं रदिपदि-जेदुं।
सीयलणाहं तिहुवण-ईसं, भावजुदो हं पुण पुण वंदे॥400॥

शुद्ध भावों से अभिषेक करके पुनः शांतिमंत्र का उच्चारण किया। गंधोदक की वंदना कर श्रद्धा से मस्तक पर धारण किया॥395॥ पुनः जिनेंद्र प्रभु की तीन प्रदक्षिणा करके दिव्य द्रव्यों से तीनों योगों के द्वारा स्वयं त्रिविध कर्मों का नाशकर जगस्वामी होने के लिए जिनेंद्र भगवान् की पूजन की॥396॥ निश्चय से जिनपूजा सर्व अरिष्ट को नाश करने वाली, मंगलकारी, हितकारी, परम पुण्य को देने वाली एवं सभी पापों का क्षय करने में समर्थ है॥397॥ इंद्र व देवों के द्वारा क्षीर सागर के जल से मेरु पर्वत पर जिसका अभिषेक किया गया वे जगत् गुरु श्री शीतलनाथ भगवान् जयवंत हों॥398॥

यह जन्माभिषेक सदा सुख करने वाला एवं भावों की विशुद्धि का निर्मल हेतु है। उस समय देव-देवियों ने अति आनंद से अतिशय पुण्य का अर्जन किया था॥399॥

चंद्रमा के समान शीतल, कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले तीनों लोकों के ईश्वर श्री शीतलनाथ भगवान् की मैं मोह के क्षय एवं कर्म जित होने के लिए भावयुक्त पुनः पुनः वंदना करता हूँ॥400॥

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में भगवान् के जन्म व जन्माभिषेक का वर्णन करने वाला सप्तम सर्ग पूर्ण हुआ।

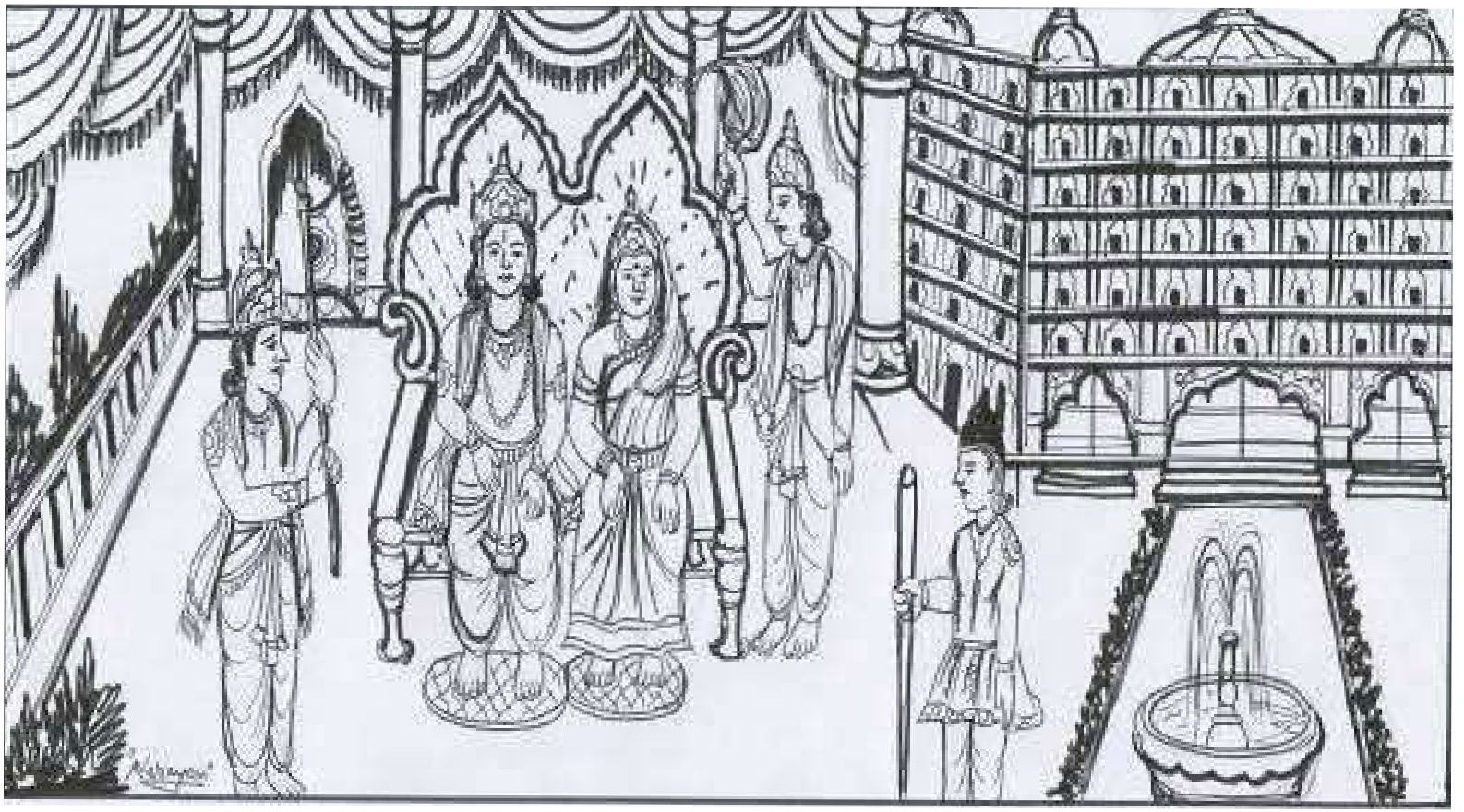

जन्मोत्सव पर महाराज दृढ़रथ व महारानी सुनंदा

अट्ठम-सग्गो

करिदं पुण पुण सचीइ, जिणिंदपक्खालणं सुहंसुयेण।
लेवं अलंकरिदं च, सुदिव्ववत्थाभूसणेहिं।।401।।

कुंडल - हार - केयूर- किरीड - कंकणाइ - भूसणजुत्तो।
तिलगंजणेहि सोहिद-जिणो सुंदरिमा-णिहाणं दु।।402।।

सोहग्गठाणं विहू, लच्छिसदणं तह सयलगुणधामं।
सुणिम्मलरयणरासी, सुहदिव्वमणिकंति-संजुदो।।403।।

अणिमिस-दिट्ठीइ तदा, अवयज्झिदो सव्वदेवदेवीहि।
अणेगविहेण करिदा, जिणत्थुदी विणयभावेहिं।।404।।

जिणस्स दक्खिण-पायंगुट्ठे विज्जंत-चिण्हं इंदेण।।
पस्सित्तु उग्घोसिदं, कप्परुक्खं तस्स सुचिंधं।।405।।

उवट्ठिद-सुविज्जाहर-मुणि-रिसि-जदि-आदीहि पस्सिदो सो।
हरिसेणं भत्तीए, विम्हयकारग-जम्मुच्छवो।।406।।

अणेगविहथुदिं कडुअ, गीद-णच्च-जयघोस-कलकलेहिं।
पट्ठवीअ णयरं पडि, सग-सग-विमाणे आरुहित्तु।।407।।

पश्चात् शचि इंद्राणी निर्मल वस्त्र से पुनः पुनः जिनेंद्र प्रभु का प्रक्षालन कर रही थी, उन्हें पोंछ रही थी, पुनः श्रेष्ठ सुगंधित द्रव्यों से लेप किया। तदनंतर श्रेष्ठ दिव्य वस्त्राभूषणों से भगवान् को अलंकृत किया।।401।। कुंडल, हार,बाजूबंद, मुकुट, कंकणादि आभूषणों से युक्त एवं तिलक व अंजन से शोभित जिनेंद्र भगवान् सौंदर्य का खजाना ही लग रहे थे।।402।। विभु सौभाग्य का स्थान, लक्ष्मी का सदन, सकल गुणों का धाम एवं शुभ दिव्य मणियों के तेज से युक्त थे।।403।। उस समय सभी देव-देवियाँ बिना पलक झपकाए ही भगवान् को देख रहे थे तब उन्होंने विनय भावों से अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति की।।404।। जिन बालक के सीधे पैर के अंगूठे पर विद्यमान चिह्न को देखकर सौधर्म इंद्र ने उनका चिह्न कल्पवृक्ष है ऐसा उद्घोष किया।।405।। वहाँ उपस्थित विद्याधर, मुनि, ऋषि, यति आदि ने हर्ष व भक्ति से आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले जन्म महोत्सव को देखा।।406।। गीत, नृत्य, जयघोष, भारी कोलाहल के द्वारा अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति कर अपने-अपने विमान पर आरूढ़ होकर भद्दिल नगरी की ओर प्रस्थान किया।।407।।

णहंगणं उल्लंघिय, परमाणंदेण वज्जघोसंता।
पहुच्चीअ सव्वा चिय, सग्गपुरी व भद्दिले तदा।।408।।
अह इंदेण पविसिदं, रायभवणम्मि तित्थयरेणं सह।
देवकिदसुविण्णासे, रायंगणम्मि य जिणबालो।।409।।
रयणमयसीहासणे, विज्जिदो अच्चंत-रोमंचेणं।
रायदिढरहस्स तदा, कहिदु-माणंदं सक्को को?।।410।।
मायामयि-णिद्दाए, इंदाणीइ पबोहपत्तजणणी।
सुणंदा आणंदेण, देवीहि सह जिणं पस्सीअ।।411।।
णिवदिढरहो सुणंदा, अवलोयिदूणं तित्थयरबालं।
ण तुट्ठो होही तदा, तस्स सोम्म-दिव्वसंत-छविं।।412।।
अह इंदेण बहुमुल्ल-वत्थाभूसणेहि पसंत-पिदरं।
पूयिदं जगपुज्जं, थुविदं अइतुट्ठभावेणं।।413।।
तुब्भे दु पुण्णवंता, सोहग्गिआ सेट्ठपुत्तजुदादो।
महकल्लाणभायगा, तिलोयसामिस्स-सामी तह।।414।।
इत्थं बहुविह-थुवंत-देवरायेणं अप्पिदो बालो।
तस्स करे आयरेण, कहिदं जम्मुच्छववियय्यम्मि।।415।।
पुरवासीहिं सह पुण, महविहवेण जम्मुच्छवो करिदो।
जणगजणणीहि लहित्तु, इंदस्स अणुमदिं हरिसेण।।416।।

तब परम आनंद से वाद्यों का घोष करते हुए आकाश रूपी आंगन का उल्लंघन कर सभी इंद्र स्वर्ग पुरी के समान उस भद्दिल नगरी में जा पहुँचे।।408।। फिर इंद्र ने तीर्थंकर बालक के साथ राजभवन में प्रवेश किया। पुनः राजांगण में देवों के द्वारा बनाए गए मंडप में रत्नमय सिंहासन पर अत्यंत रोमांच के साथ जिनबालक को विराजमान किया। उस समय राजा दृढ़रथ के आनंद को कहने में कौन समर्थ था।।409-410।। इंद्राणी के द्वारा मायामयी निद्रा से प्रबोध को प्राप्त माता सुनंदा आनंद से देवियों के साथ जिनेंद्र भगवान् को देखने लगीं।।411।। तब राजा दृढ़रथ व रानी सुनंदा तीर्थंकर बालक की सौम्य, दिव्य, शांत छवि को देखकर संतुष्ट नहीं हो रहे थे।।412।। फिर इंद्र ने बहुमूल्य वस्त्राभूषण के द्वारा जगत्पूज्य प्रशांत माता-पिता की अति तुष्टभाव से पूजा की एवं इस प्रकार स्तुति की।।413।। श्रेष्ठ पुत्र से युक्त होने से आप दोनों पुण्यवान्, सौभाग्यशाली, महाकल्याण के भाजक तथा तीन लोक के स्वामी के स्वामी हैं।।414।। इस प्रकार बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए देवराज इंद्र ने उनके हाथ में आदरपूर्वक बालक को दिया तथा जन्मोत्सव के विषय में बताया।।415।। पुनः माता-पिता ने इंद्र की अनुमति प्राप्त कर हर्षपूर्वक नगरवासियों के साथ महावैभव से युक्त जन्मोत्सव किया।।416।।

णयरवासि-सव्वणरा, देवोव्व णारी देवंगणा इव।
भासीअ अइउच्छुगा, तह सग्गोव्व भद्दिलणयरी।।417।।
मेरुम्मि महुच्छवोव्व, अइकोलाहलेण जयघोसेहिं।
वज्जघोस-णच्च-गीद-आदीहि महुच्छवो होही।।418।।
ताणाणंदं पस्सिय, आणंदणाडयं करिद-मिंदेण।
अइविम्हयुप्पायगं, अच्चंतमणोहरं रम्मं।।419।।
गब्भावदारं पुणो, जम्महिसेगसंबंधिदणाडयं।
पुव्वजम्मसंबंधिद-मह करीअ दु अइभत्तीए।।420।।
करिदं सहस्सकरेहि, पुप्फंजलि-खिवंत-पुरंदरेणं।
सुंदरतंडवणच्चं, भत्तिरायेण पमोदेणं।।421।।
खणे दूरो णिअडो य, इंदो खणे णहे खणे महीए।
खणेगणेगो खणे य, वावी अणू हु दिस्सीअ सो।।422।।
कइवया अंगुलीसुं, कइवया दु सुरंगणा बाहूसुं।
लासीअ सुभत्तीए, कइवया भूमीए गगणे।।423।।
तिलोयरंजगणच्चं, एयभवावदारि-सक्केण तदा।
करिदं अइभत्तीए, सव्वपावकम्मक्खयस्स दु।।424।।

उस समय अति उत्सुक नगरवासी सभी पुरुष देव के समान व नारियाँ देवांगनाओं के समान प्रतिभासित हो रही थी। तथा भद्दिलनगरी स्वर्ग के समान लग रही थी।।417।। अत्यंत कोलाहल व जयघोषों के साथ जैसा मेरु पर्वत पर महोत्सव हुआ था उसी प्रकार वाद्य यंत्रों के घोष, नृत्य, गीत आदि के द्वारा यहाँ महोत्सव हुआ था।।418।। उनके आनंद को देखकर इंद्र ने अति आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला, अत्यंत मनोहर व रम्य आनंद नामक नाटक किया।।419।। पुनः अतिभक्ति से गर्भावतार, जन्माभिषेक संबंधी नाटक फिर पूर्व जन्म संबंधित नाटक किया।।420।। सौधर्म इंद्र ने हजार हाथों से पुष्पांजलि क्षेपण किया। पुनः भक्ति के अनुराग व प्रमोद से सुंदर तांडव नृत्य किया।।421।। नृत्य करता हुआ वह इंद्र क्षण में ही दूर दिखाई देता था और क्षण में ही पास नजर आता था। वह क्षण में ही आकाश में दिखाई देता और क्षण में भूमि पर नजर आता था। एक क्षण में एक दिखता था, एक क्षण में ही अनेक रूपों में दिखाई देता था। एक पल में सब जगह व्याप्त हो जाता था और एक क्षण में ही अणु रूप अर्थात् बहुत छोटा हो जाता था।।422।। कई देवांगनाएँ इंद्र की अंगुलियों पर नृत्य कर रही थीं। कई देवांगनाएँ इंद्र की भुजाओं पर नृत्य कर रही थीं। कितनी ही देवांगनाएँ पृथ्वी पर और कितनी ही देवांगनाएँ आकाश में नृत्य कर रही थीं।।423।। तब एक भवावतारी इंद्र ने अपने पाप कर्मों के क्षय के लिए अति भक्ति से तीनों लोकों को रंजायमान करने वाला नृत्य किया।।424।।

अब्भुदणाडयं दु तं, पस्सिय विम्हयजुदा होज्ज सव्वा।
सुपुप्फवरिसो करिदो, देवेहि हरिसेण गगणादु।।425।।

तिलोए णिच्छयेणं, सवरसीयलत्तकारणं तम्हा।
सीयलणाह-णामो दु, उच्चरिदो सोहम्मिंदेण।।426।।

सव्वदेवेहिं सहिद-पुरवासीहिं कुणिदो जयघोसो।
तित्थयर-पहु-णामेण, सुपूरिदो तदा आयासो।।427।।

ण्हाणस्स सुमंडणस्स, सक्कारस्स किड्डाए सक्केण।
णिओयिदा आयरेण, बहुदेवी अप्पसंसारी।।428।।

समवयवेसरूव-सुरकुमारा णिओयिदा सक्केणं च।
बालंगुट्ठे अमियं, सिंचिय गदा सव्वा सग्गं।।429।।

सुक्कपक्खचंदोव्व हि, तित्थयरस्स पावणबालवत्था।
जणाणंददायगा दु, उज्जला वड्ढंतगुणजुदा।।430।।

उस अद्भुत नाटक को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। देवों ने आनंदपूर्वक आकाश से पुष्पों की वर्षा की।।425।। वे तीनों लोक में निश्चय से स्वपर शीतलता के हेतु हैं इसीलिए सौधर्म इंद्र ने उनका 'शीतलनाथ' नाम उच्चरित किया।।426।। सब देवों के साथ पुरवासियों ने तीर्थंकर प्रभु के नाम से जयघोष की, श्री शीतलनाथ भगवान् की जयकार लगायी उस समय जयकार से आकाश पूरित ही हो गया था।।427।। पुनः सौधर्म इंद्र ने आदरपूर्वक भगवान् को स्नान कराने, अलंकृत करने, शरीर के संस्कार (तेल, उबटन आदि लगाना) और क्रीड़ा कराने के लिए बहुत-सी अल्प संसारी देवियों को नियुक्त किया।।428।। सौधर्म इंद्र ने ही समान आयु, वेष, रूप वाले देवकुमारों को भी प्रभु की सेवा में नियुक्त किया। फिर बालक के अंगूठे में अमृत सिंचन कर सभी देव स्वर्ग को चले गए।।429।। तीर्थंकर प्रभु की पावन बाल-अवस्था शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की भाँति ही थी। जैसे शुक्ल पक्ष का चंद्रमा दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए सभी लोगों के लिए आनंद देने वाला होता है उसी प्रकार बढ़ता हुआ वह जिन बालक सभी लोगों को अत्यंत आनंद प्रदान करने वाला था। जैसे बढ़ता चंद्रमा कलाओं से उज्ज्वल होता जाता है अथवा उसकी चमक चाँदनी आदि बढ़ती जाती है उसी प्रकार वह तीर्थंकर बालक अनेक विद्या व कलाओं से उज्ज्वल एवं बढ़ते हुए गुणों से युक्त था अर्थात् जैसे-जैसे वह बड़ा हो रहा था उसमें विस्मयकारक गुण दिखने लगे थे, गुण वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे।।430।।

विअसिदमाण-कलिगासु, जह जह वड्ढदि पडिदिणं सुगंधं।
तह तह देहकंती वि, चित्तगुणा सीयलबालस्स॥431॥

तस्स देहस्स आभा, उदिदबालक्ककिरणोव्व हेमं व।
अक्क-पहा तो किंचिवि, दुहयरा किण्णुणजिण-आहा॥432॥

अक्कतेजं पस्सिदुं, सामण्ण-जणा णो होज्ज समत्था।
णयणाणि दूभंति अवि, जलं आगच्छदि णयणेसुं॥433॥

किण्णु सीयलणाहं दु, सव्वजणा पस्सेदुं च समत्था।
तं पस्सित्ता करीअ, सुह-आणंदाणुभवं तहा॥434॥

गच्छीअ सुरमित्तेहि, सहिदो एगदा विविणविहारस्स।
सीयलणाह-कुमारो, पसत्थपमोदाणुरत्तो य॥435॥

पस्सित्तु एगहत्थिं, एयदेवसहा तप्परो होही।
पुरिल्ला गय-पसंगं, सुणाविदुं कुमाराणाए॥436॥

एयरायस्स आसी, जम्मंधा छपुत्ता पावुदयेण।
कंखजुदा सव्वा ते, हत्थिदंसणस्स जाणणस्स॥437॥

केरिसो दु गयो पसू, तत्थ कोउगेण गच्छीअ सव्वा।
सुंडं फासिय पढमो, आइक्खीअ सो दु तुरिअं व॥438॥

खिलती हुई कलियों में प्रतिदिन जैसे-जैसे सुगंधि बढ़ती है उसी प्रकार श्री शीतलनाथ बालक की शरीर की कांति व चित्त गुण वृद्धिंगत हो रहे थे॥431॥ उनकी देह की आभा उदय को प्राप्त बाल सूर्य की किरण के समान अथवा स्वर्ण के समान थी। विशेषता यह है कि सूर्य की प्रभा तो किंचित् दु:खकर भी होती है किन्तु जिन बालक की आभा किंचित् भी दु:खकर नहीं थी॥432॥ सामान्य जन सूर्य के तेज को देखने में समर्थ नहीं होते। उससे आँखें दुखती भी हैं ओर आँखों में पानी भी आ जाता है किन्तु श्री शीतलनाथ को देखने में सभी लोग समर्थ थे। उनको देखकर सभी आनंद और सुख का अनुभव करते थे॥433-434॥ एक बार प्रशस्त प्रमोद में अनुरक्त श्री शीतलनाथ कुमार अपने देव सखाओं व अन्य राजकुमार मित्रों के साथ वन विहार के लिए गए॥435॥ वहाँ एक हाथी को देखकर एक देव-सखा कुमार की आज्ञा से प्राचीन कोई हाथी का प्रसंग सुनाने में तत्पर हुआ॥436॥ एक बार पापोदय से एक राजा के जन्म से अंधे छ: पुत्र थे। वे सभी हाथी को देखने, उसको जानने की इच्छा से युक्त थे॥437॥ एक दिन 'वह गज पशु कैसा है' इस प्रकार कौतूहलवश वे सभी गए। प्रथम पुत्र ने हाथी की सूंड को छूकर कहा कि वह निश्चय से तूर्य की तरह है॥438॥

विलासमुदरं फरिसिय, विदिय-पुत्तेणं तदा वज्जरिदं।
णेव तुरिअं व हत्थी, भित्ती व जाण णिच्छयेणं।।439।।

गयपादं आमुसित्तु, आअक्खिदं तिदिय-अंधपुत्तेण।
ण तुरिअं व ण भित्तीव, णिच्छयेण हवेदि थंभोव्व।।440।।

कण्णं आलिहदूणं, उप्पालिदं चदुत्थंधपुत्तेण।
णतुरिअ-भित्ति-थंभोव्व,णिच्छयेणहवेदि विअणोव्व।।441।।

दंतं पम्हुसदूणं, पंचमपुत्तेण कहिदं सूलोव्व।
णो तुरिअं व भित्तीव, णो थंभोव्व णेव विअणोव्व।।442।।

लंगूलं आलुंखिय, रज्जुव्व सीसिदं छट्ठमंधेण।
ण तुरिअ-भित्ति-थंभोव्व,णो विअणोव्व णेव सूलोव्व।।443।।

अंधादु ते ण सक्का, विआणिदुं गयं जं गयोव्व गयो।
तेहिं सच्चं वदिदं, जिणकुमारो दु कहीअ तदा।।444।।

सिआवाओ दु णेयो, वत्थुसरूवकहणविही सम्मेण।
एगवत्थुम्मि बहुआ, धम्मा विज्जंति णियमेणं।।445।।

संभवा दु अत्थि-णत्थि, आइ-रूवेणं विवरीय-धम्मा।।
णयेहि ताण संभवो, वण्णाण मप्पिदणप्पिदेहि।।446।।

तब द्वितीय पुत्र ने हाथी के विशाल उदर को स्पर्श करके कहा कि हाथी तूर्य के समान नहीं है। वह निश्चय दीवार के समान जानो।।439।। पुनः तृतीय अंधे पुत्र ने हाथी के पैर को स्पर्श कर कहा कि हाथी न तो तूर्य के समान है, न दीवार के समान है, वह निश्चय से स्तंभ के समान है।।440।। पुनः चौथे अंधे पुत्र ने हाथी के कान को छुआ और बोला कि हाथी न तो तूर्य के समान है, न दीवार के समान है और न ही स्तंभ के समान है वह निश्चय से बीजने (पंखे) के समान होता है।।441।। पुनः पाँचवे पुत्र ने हाथी का दाँत छूकर कहा कि हाथी न तूर्य की तरह होता है, न दीवार की तरह होता है, न स्तंभ की तरह होता है और न पंखे की तरह होता है वह शूल की तरह होता है।।442।। पुनः छठे अंधे पुत्र ने हाथी की पूंछ छूकर कहा कि वह न तूर्य, न दीवार, न स्तंभ, न पंखे और न शूल की तरह होता है वह तो रस्सी की तरह होता है।।443।। पुनः सखा बोला कि वे अंधे होने के कारण हाथी को जानने में समर्थ नहीं थे जबकि हाथी तो हाथी के समान ही होता है तब जिन कुमार ने कहा कि वे सभी सच कह रहे थे।।444।। सम्यक् रूप से वस्तु स्वरूप के कहने की विधि स्याद्वाद जानना चाहिए। नियम से एक वस्तु में बहुत धर्म विद्यमान होते हैं।।445।। वस्तु में अस्ति-नास्ति आदि रूप से विपरीत धर्म संभव हैं। उन सभी धर्मों का वर्णन अर्पित व अनर्पित रूप से नयों के द्वारा संभव है।।446।।

एग रायकुमारेण, तदा पुच्छिद-मिदं कहं संभवो।
सेद-दंतावलिं चिय, पस्संत-जिणेण पज्जरिदं।।447।।
जह उसहणाह-देवो, पढम-तित्थयरो कुलयरो पुत्तो।
जणगो पिआमहो अवि, पदी ससुरो वि सावेक्खेण।।448।।
अणेग-पसंगेसुं दु, सगबुद्धिकउसलेण सिक्खावीअ।
सयायारं-अहिंसा-सच्चाइं सहजचरियाए।।449।।
कोडि-कोडि-मणुसेसुं, पुव्वाणिदोहिणाणेणुक्किट्ठो।
तस्स गुणा वण्णेदुं, ण सक्को पंडिदो इंदो वि।।450।।
सहावेण तित्थयरो, सव्वलोगिगसुविज्जाधारगोत्ति।
मदिसुदोहिणाणेहिं, सोहिदो जगम्मि ससंगोव्व।।451।।
जो करेदि घोरतवं, णिम्मलसंजमेण सह पुव्वभवे।
सो पुण्णवंतो सव्वपुण्णफलं लहिद सहावेण।।452।।

चौपाई छंद

अदिसयपुण्णवंतभयवंतो, सिरि सीयलणाहो जयवंतो।
तस्स सीदछायं पावेदुं, हं णमामि तं अहक्खयेदुं।।453।।

एक राजकुमार ने पूछा कि यह कैसे संभव है? तक श्वेत दंतावली दिखाते हुए जिन कुमार ने कहा कि जिस प्रकार श्री ऋषभनाथ देव सापेक्ष रूप से प्रथम तीर्थंकर थे, कुलकर भी थे, पुत्र, पिता, दादा, पति व ससुर भी थे।।447-448 इस प्रकार वे जिनकुमार अनेक प्रसंगों में सहज चर्या व स्व बुद्धि-कौशल से सदाचार, अहिंसा, सत्य आदि की शिक्षा देते थे।।449।। पूर्व भव से लाए गए अवधिज्ञान के द्वारा करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में वे उत्कृष्ट थे। उनका गुण वर्णन करने के लिए कोई पंडित वा इंद्र समर्थ नहीं था।।450।। तीर्थंकर प्रभु स्वभाव से ही सर्व लौकिक श्रेष्ठ विद्याओं के धारक थे। वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान युक्त थे। संसार में चंद्रमा की भाँति सुशोभित थे।।451।। जो जीव पूर्व भव में निर्मल संयम से युक्त घोर तपस्या करता है वह पुण्यवान् स्वभाव से इन पुण्यफलों को प्राप्त करता है।।452।।

अतिशय पुण्यवान् श्री शीतलनाथ भगवान् सदा जयवंत हैं। उनकी शीतल छाया प्राप्त करने व पाप के नाश के लिए मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।।453।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में भगवज्जातकर्मोत्सव व क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होती अवस्था का वर्णन करने वाला अष्टम सर्ग पूर्ण हुआ।

तीर्थंकर कुमार का राज्याभिषेक

णवम-सग्गो

बालवत्थाए गदे, किसोरवत्थं लहीअ सुरिंदोव्व।
रम्मदेहो पिय-महुर-वाणी मोहीअ सव्वजणा।।454।।

सीयलणाहरूवम्मि, तेहि लहिदा अचिंतणिही इत्थं।
चिंतंता मलयदेस-वासी अच्चंतपसण्णा दु।।455।।

तित्थयरो जम्मादो, हेमं व कंतिवंत देहजुत्तो।
सेदमलादो रहिदो, खीरं व सेदरत्तजुत्तो।।456।।

अइसुगंधिदो अतुल्ल-बलजुदो तह पियहियवाणिसहिदो।
समचउस्संग-जुत्तो, वज्जरिसहणारायेणं च।।457।।

णवसय - वंजणेहिं च, अट्ठोत्तरसय - सुहलक्खणेहिं च।
संजुत्तो सोहीअ दु, लोयाइसाइ-महापुरिसो।।458।।

तस्स रूव-मवलोयिय, कइवय-थी मोहीअ तस्स रूवे।
कइवया विम्हरिय सग-कत्तव्वं अण्ण-मणंसी दु।।459।।

तहवि तस्स सुरूवो दु, णेव वासणा-उप्पायगो कया वि।
उसजुदो पीदि-हेदू, ण मज्जादा-उल्लंघणस्स।।460।।

जब भगवान् की बाल्यावस्था व्यतीत हुई तब देवेंद्र के समान उन्होंने किशोरावस्था को प्राप्त किया। उनकी मनोहर देह एवं प्रिय-मधुर वाणी सभी लोगों को मोह लेती थी।।454।। श्री शीतलनाथ के रूप में उन्हें अचिंत्य निधि की प्राप्ति हुई है ऐसा विचार करते हुए मलय देश के निवासी अत्यंत प्रसन्न थे।।455।। वे तीर्थंकर कुमार जन्म से ही स्वर्ण के समान कांतिवान् मनोहर देह से युक्त थे। वे पसीने एवं मल (मलमूत्रादि) से रहित थे। उनका रक्त दूध के समान सफेद था।।456।। उनका तन अत्यंत सुगंधित था। वे अतुल्य बल से युक्त व प्रिय-मधुर-हितकर वाणी से सहित थे। उनका संस्थान समचतुरस्र एवं संहनन वज्रवृषभनाराच था।।457।। वे लोकातिशायी महापुरुष नौ सौ व्यंजन एवं एक सौ आठ शुभ लक्षणों से युक्त सुशोभित थे।।458।। उनके रूप को देखकर कई स्त्रियाँ उनके रूप पर मोहित हो जाती थी। कई तो अपने कर्त्तव्य को भूलकर अन्य मनस्क हो जाती थीं। तथापि उनका सुरूप कभी भी वासना का उत्पादक नहीं था। उनका रूप धर्म से युक्त व प्रीति का हेतु था, वह मर्यादा के उल्लंघन का कारण नहीं था।।459-460।।

एयदा दु दिढरायो, चिंतेज्जा पस्सिय कुमारवत्थं।
को सुंदरी सक्केज्ज, हरिदुं अइरूववंतमणं।।461।।

कयाइ सा वि संभवो, किण्णु अइमंदविसयरागजुत्तो।
जहवि धम्मपवट्टगो, होज्ज सव्वसंगं उज्झित्तु।।462।।

लोयववहारेणं च, तहवि तस्स सुहपरिणयस्स कुणेमु।
सुजोग्ग-गुणवंत-पुण्णवंत-कण्णाए वियारं दु।।463।।

इत्थं रोयित्ता दिढरहेण पहुं पडि गच्छित्तु कहिदं।
देवो इट्ठसुकण्णं, विवाहिदुं तुमं मणं कुणहि।।464।।

पयासंततीए खलु, अंगीकरहिं सुहविवाहधम्मं।
एवंविह कहिदूणं, राओ पस्सीअ सगपुत्तं।।465।।

मंद-महुर-हस्सेणं, कहिदं ओं सद्दं सुणित्तु तदा य।
करिदो विवाहुच्छवो, तस्सणुमदिं जाणिय णिवेण।।466।।

रदीव अइ-रूववंत-कंतिल्ल-मणोहर-कण्णाहिं सह।
सुविवाहं संपण्णं, धी-सिरि-जसालयरूवेहिं।।467।।

एक बार प्रभु की कुमारावस्था को देखकर राजा दृढ़रथ ने सोचा की इस अतिरूपवान् कुमार का मन हरण करने में कौन सुंदरी समर्थ हो सकेगी।।461।। कदाचित् उनका मन हरण करने वाली कोई सुंदरी मिल भी जाए किंतु ये अतिमंद विषय राग से युक्त हैं। यद्यपि ये सर्व परिग्रह का त्याग कर धर्म प्रवर्तक होंगे तथापि लोक व्यवहार के कारण सुयोग्य, गुणवान्, पुण्यवान् कन्या से उनके शुभ परिणय का विचार तो मुझे करना ही चाहिए।।462-463।। इस प्रकार निर्णय कर राजा दृढ़रथ प्रभु के पास गए और कहा हे देव! इष्ट कन्या से विवाह के लिए आप अपना मन बना लीजिए।।464।। प्रजा की संतति के लिए आप शुभ विवाह धर्म को अंगीकार कीजिए। इस प्रकार कहकर राजा अपने पुत्र को देखने लगे।।465।। तब तीर्थंकर कुमार की मंद-मधुर मुस्कान और उनके द्वारा कहे गये 'ओं' शब्द को सुनकर राजा ने उनकी अनुमति जानकर विवाह उत्सव किया।।466।। रति के समान अत्यंत रूपवान्, कांतिवान्, मनोहर, बुद्धि, लक्ष्मी व यश के आलय रूप कन्याओं के साथ उनका विवाह संपन्न हुआ।।467।।

कला-णिउणा दु राणी, सुगुणी महुरभासी कलयंठीव।
तस्स चित्ताणुऊला, अइसुंदरा देवंगणा व।।468।।

चंदोव्व आणणं तह, सुगोव्व णासिगा णयणं सुमिगीव।
पउमं व विअसिद-मुहो, दंता दाडिमबीअं व तह।।469।।

संखोव्व सेट्ठ-गीवा, वक्खत्थलं तह सुवण्णकलसं व।
गहणवावीव णाही, कडी मेरु-मेहला व्व वरा।।470।।

लच्छी व सेट्ठाकरा, सरस्सदीव उण्णय-भालो ताइ।
चित्तम्मि सुहविसुद्धी, वर धम्मिणि-साहिगा व्व तहा।।471।।

राणीए सुंदरिमं, वण्णिदुं णो समत्थो को वि णरो।
ताए सह भोयीअ दु, पुण्णफलं सीयलकुमारो।।472।।

सुभोया भुंजंतस्स, अद्धंगिणीहिं सहिदस्स खणं व।
बहुसुहयालो गदो य, लोयसामि-सीयलणाहस्स।।473।।

एयदाहि पस्सिदाणि, सुहसिविणाणि णिसीइ चरिमयामे।
अह तस्स फलेण होज्ज, पुण्णमंत-पुत्तो राणीइ।।474।।

उनकी रानी कलाओं में निपुण, सुगुणी, कोयल के समान मधुर भाषिणी, उनके चित्त के अनुकूल एवं देवांगना के समान अतिसुंदर थी।।468।। उन महारानी का चेहरा चंद्रमा के समान, नासिका शुक के समान, नयन श्रेष्ठ मृगी के समान, मुख खिलते हुए कमल के समान, दाँत अनार के दाने के समान, श्रेष्ठ ग्रीवा शंख के समान, वक्षस्थल स्वर्ण कलश के समान, नाभि गहरी वापिका के समान तथा कमर मेरु की मेखला के समान श्रेष्ठ थी।।469-470।। उनके श्रेष्ठ कर लक्ष्मी व उन्नत भाल सरस्वती के समान थे। उनके चित्त में शुभ विशुद्धि उत्कृष्ट धर्मिणी साधिका के समान थी। रानी की सुंदरता का वर्णन करने में कोई मनुष्य समर्थ नहीं था। उन रानी के साथ श्री शीतलकुमार पुण्य का फल भोग रहे थे।।471-472।।उत्कृष्ट श्रेष्ठ भोगों को भोगते हुए अपनी अर्द्धांगिनियों के साथ तीन लोक के स्वामी श्री शीतलनाथ भगवान् का बहुत शुभ काल व्यतीत हो गया।।473।। एक बार रानी ने रात्रि के अंतिम पहर में शुभ स्वप्न देखे जिसके फल स्वरूप उनके पुण्यवान् पुत्र हुआ।।474।।

सीयलणाहदेहस्स, अवगाहणा णउदी धणू आसी।
लक्खेगपुव्ववरिसं, सुहयर-दुहहर-सुपुण्णाउं।।475।।

तस्स चदुत्थभागम्मि, गलिदम्मि रायाहिसेगस्स तस्स।
सग्गागददेवेहिं, महामहुच्छवो कुव्विदो दु।।476।।

तत्थाणंदमंडवो, णिम्माणिदो सुरेहि अहिसेगस्स।
रयणचुण्ण-रंगावलि-पइण्ण-पुप्फेहि सोहिदो य।।477।।

रयणजडिद-चंदायय-मुत्तादीण छायाइ चित्तिदस्स।
वड्ढीअ रंगमहीइ, सोहं मह-मंगलदव्वाणि।।478।।

सीयलणाहस्स जसं, गाएज्ज पीदीइ किंनर-देवी।
तत्थ जुदा सुर-देवी, मंगलहिसेगसामग्गीहि।।479।।

खीरसिंधु-णंदीसर-वावि-आदीण णीरेण देवेहि।
अहिसेगो किदो तदा, सुरायलच्छीए धारं व।।480।।

दिढरायेणं सह बहु-महरायेहि कदो रज्जहिसेगो।
सेट्ठो रायो इमो हि, एवंविह वियारिदूणं च।।481।।

उन श्री शीतलनाथ भगवान् के शरीर की अवगाहना नब्बे धनुष थी। सुख को करने वाली और दु:ख को हरने वाली उनकी पूर्णायु एक लाख वर्ष पूर्व थी।।475।। उस पूर्ण आयु के चतुर्थ भाग व्यतीत होने पर अर्थात् 25 हजार वर्ष पूर्व की आयु में उनके राज्याभिषेक के लिए स्वर्ग से आए देवों ने महा महोत्सव किया।।476।। वहाँ देवों ने राज्याभिषेक के लिए आनंद मंडप का निर्माण किया। वह रत्नों के चूर्ण से बनी रंगोली और बिखरे हुए फूलों से सुशोभित था।।477।। बड़े-बड़े मंगलद्रव्य रत्नजड़ित चंदोवा और मोती आदि की छाया से चित्रित रंगभूमि की शोभा बढ़ा रहे थे।।478।। किन्नर जाति की देवियाँ प्रीति-पूर्वक श्री शीतलनाथ का यश गा रही थीं। वहाँ पर देव व देवियाँ राज्याभिषेक की सामग्री व मंगलसामग्री से युक्त थे।।479।। फिर देवों ने क्षीरसागर और नंदीश्वर की वापिका आदि के जल से श्री शीतलनाथ का राज्याभिषेक किया, तब ऐसा लग रहा था मानो राजलक्ष्मी की धारा ही हो।।480।। राजा दृढ़रथ के साथ बहुत से बड़े-बड़े राजाओं ने 'ये ही श्रेष्ठ राजा हैं' इस प्रकार विचार कर राज्याभिषेक किया।।481।।

पुण करिदूण-मारदिं, सेट्ठदिव्ववत्थाभूसणादीहि।
अलंकिदो सीयलो दु, जय-जय-घोसंत-देवेहिं।।482।।

रायादिढरायेणं, धाराविदो हु सिरि-सीयलणाहं।
अइउल्लासेणं सग-किरीडो बहु-आणंदेणं।।483।।

पच्छा य अहिसेगस्स, देव-देवीओ सव्वा गच्छीअ।
सग्गं जयघोसंता, जिणधम्माणुरत्ता भत्ता।।484।।

पण्णास-सहस्स-पुव्व-वस्संतं करीअ णायणीदीइ।
सुरज्जं पयासुहस्स, संति-धण-धण्ण-विद्धि-सहिदं।।485।।

णेव तत्थ दुब्भिक्खं, णो अणावरिसा णेव अइवरिसा।
णेव महामारी वा, भूकंवाइ-पइडिपकोवो।।486।।

मलयस्स पया हु तदा, अच्चंत-आणंदिया संतुट्ठा।
रविदंसणेण जणा व्व, सुरिंदं लहिय दिवे सुरा व्व।।487।।

आणंद-सुह-संति-धण-धण्णाणं विड्ढी होही देसे।
ववहारो पेम्मायर-वच्छलाणं परोप्परे अवि।।488।।

पुनः जय-जय घोष करते हुए देवों ने आरती करके श्रेष्ठ दिव्य वस्त्राभूषणों के द्वारा श्री शीतलनाथ को अलंकृत किया।।482।। राजा दृढ़राज ने अति उल्लास और बहुत आनंद से श्री शीतलनाथ को अपना मुकुट पहनाया।।483।। राज्याभिषेक के पश्चात् जिनधर्मानुरक्त, जिनभक्त सभी देव-देवियाँ जय घोष करते हुए स्वर्ग को चले गए।।484।। श्री शीतलनाथ जी ने प्रजा के सुख के लिए शांति, धन-धान्य की वृद्धि सहित न्याय नीतिपूर्वक पचास हजार वर्ष पूर्व तक समीचीन राज्य किया।।485।। उस समय वहाँ राज्य में दुर्भिक्ष नहीं था, अतिवृष्टि-अनावृष्टि नहीं थी, महामारी नहीं थी और भूकंपादि प्रकृति प्रकोप नहीं था।।486।। तब मलय देश की प्रजा वैसे ही अत्यंत आनंदित व संतुष्ट थी जैसे सूर्य के देखने से लोग एवं स्वर्ग में देवेंद्र को प्राप्त कर देव होते हैं।।487।। देश में तब आनंद, सुख, शांति, धन-धान्य की वृद्धि हो रही थी तथा परस्पर में प्रेम, आदर एवं वात्सल्य का व्यवहार था।।488।।

जह को वि गेह-मुक्खो, पालदि सगपरिवारं वच्छलेण।
तह सीयलणाह-णिवो, पालीअ पजं सुभावेहिं।।489।।

सास-रक्खाए जहा, खेत्ते हवेदि वाडी णियमेणं।
तह दु पया-रक्खाए, रायाणुसासणं सुणीदी।।490।।

णिवणीदीए सव्वा, सपरिवारं पालीअ णागरिआ।
सुहेण सगकत्तव्वं, तहा अवि अइ-उच्छाहेणं।।491।।

तत्थ सिक्खासु मुक्खो, अहिंसाइ-भावो सव्वकलासु वि।
दयाधम्मस्स णीदी, पवट्टीअ सहज-भावणाइ।।492।।

कलाण महापसारो, तत्थ सकुलमज्जादाणुसारेण।
सुहस्स णरणारीणं, सयायार-अनुवाइ-सिक्खा।।493।।

जो को वि णरो णारी, सेट्ठायंसियो बाल-बाला वा।
दाएज्ज पुरक्कारं, पत्तेय-वस्से होज्ज ताण।।494।।

जे के वि णरा णारी, देस-धम्माण लोय-कल्लाणाय।
करेज्ज विसिट्ठकज्जं, देज्ज पुरक्कारं च ताणं।।495।।

जिस प्रकार कोई गृहमुख्य वात्सल्यपूर्वक अपने परिवार का पालन करता है उसी प्रकार राजा शीतलनाथ सुभावों से प्रजा का पालन कर रहे थे।।489।। जिस प्रकार फसल (शस्य) की रक्षा के लिए खेत में नियम से बाड़ होती है उसी प्रकार प्रजा की रक्षा के लिए राजा का अनुशासन और नीति थी।।490।। राजा की नीति से सभी नागरिक अपने परिवार का सुख से पालन करते थे तथा अति-उत्साह से अपने कर्त्तव्य का भी पालन करते थे।।491।। वहाँ शिक्षा में मुख्य अहिंसादि भाव था, सभी कलाओं में सहज भावना से दया धर्म की नीति प्रवर्तित थी।।492।। वहाँ स्वकुल मर्यादा के अनुसार कलाओं का महा प्रसार था। सुख के लिए नर-नारियों की शिक्षा सदाचार का अनुकरण करने वाली थी।।493।। जो कोई भी नर, नारी, बालक या बालिका श्रेष्ठ आदर्श होता था तो प्रत्येक वर्ष उनके लिए पुरस्कार दिया जाता था।।494।। जो कोई भी नर-नारी देश व धर्म के लिए तथा लोक कल्याण के लिए विशिष्ट कार्य करते थे उनके लिए भी पुरस्कार दिया जाता था।।495।।

जदवि तत्थ अवराहा, कयाइ भूवदिस्स सुसासणादो।
अण्णाय-णिरोहत्थं, तहवि दाएज्जा लहुदंडं।।496।।

कं वि पडि ण अण्णायं, णेव को वि देज्ज दुहं णिब्बलाण।
पावादु होज्ज भीदी, सयायाराइ-गुणविड्ढीइ।।497।।

दंड-ववत्था दु तत्थ, अण्णेसु दोसविट्टिं रुंधेदुं।
सुसक्कार-पसारिदुं, अवराह-विमुंचणत्थं तह।।498।।

सव्वेसुं परोप्परे, उवयार-सहजोग-भावणा सया।
परकट्ठेणं ताणं, हियं विराही ण सकट्ठेण।।499।।

दुद्ध-पदायग-मादा-पसू व्व पुप्फफलदायगरुक्खो।
णागरिआ देज्ज करं, सुहेण रायकोसविड्ढीइ।।500।।

पयाए भयवदोव्व हु, रायसीयलणाहो वंदणीओ।
पयापालगो जम्हा, संरक्खगो संवड्ढगो य।।501।।

णीर-खणिजलवण-रयण-पुप्फफलेहि अइसंपण्णदेसो।
राय-पयाण पुण्णेण, सुसक्कार-कलादीहि सो वि।।502।।

अइपरक्कमी रायो, णायसीलो सयायारी धीरो।
पयावच्छल-धम्मिगो, पिदुव्व रक्खगो मिदुभासी।।503।।

यद्यपि राजा शीतलनाथ का सुशासन होने से वहाँ अपराध कदाचित् ही थे, तदपि अन्याय के निरोध के लिए लघुदंड दिए जाते थे।।496।। किसी के प्रति अन्याय न हो, कोई निर्बलों को दु:ख न दे और पापों से भीति या डर हो अत: वहाँ दंड व्यवस्था थी। अथवा सदाचारादि गुणों की वृद्धि के लिए, अन्यों में दोष वृत्ति के रोध के लिए, सुसंस्कारों के प्रसार तथा अपराधों के नाश के लिए वहाँ लघु दंड व्यवस्था थी।।497-498।। सभी में परस्पर में सदा उपकार व सहयोग की भावना थी। अपने कष्ट से नहीं, दूसरों के कष्ट से उनका हृदय द्रवित होता था।।499।। जिस प्रकार दूध देने वाले मादा पशु दूध को तथा वृक्ष पुष्प व फल को बिना कष्ट के देते हैं उसी प्रकार नागरिक राजकोष की वृद्धि के लिए कर (टैक्स) दिया करते थे।।500।। राजा शीतलनाथ प्रजा के लिए भगवान् के समान वंदनीय थे क्योंकि वे प्रजा पालक, प्रजा के संरक्षक व संवर्द्धक थे।।501।। राजा व प्रजा के पुण्य से वह देश जल, खनिजलवण, रत्न, पुष्प, फल तथा सुसंस्कार व कला आदि से भी अति संपन्न था।।502।। राजा शीतलनाथ अति पराक्रमी, न्यायशील, सदाचारी, धीर, प्रजावत्सल, धार्मिक, पिता के समान रक्षक व मृदुभाषी थे।।503।।

परोवयारो करुणा, वच्छल्लं तच्चचिंतणं संती।
समत्तमोदारियं च, सहिण्हुत्तं दु अप्पसहीव।।504।।

महुरा हिय-मिय-वाणी, कलाणेउण्णं लावण्णं तस्स।
देहगुणा किंकरोव्व, अणुवम-सुंदरिमा मदणोव्व।।505।।

तयि-वत्ता-अणविक्खिगि-दंडणीदी इमाहि णिवविज्जाहि।
संजुदो णिवसीयलो, अणुसासिदो मज्जाइल्लो।।506।।

काम-कोह-माण-लोह-मद-हरिसादो सडंतर-सत्तूदु।
रहिदो सीयलणाहो, इमादु राओ दु जयवंतो।।507।।

राय-मंति-किला-कोस-देस-वाहिणि-मित्तेहिं चिय तस्स।
रज्जं सुसोहिदं सय, सत्तंगेहि इमेहि लोए।।508।।

जिणधम्म-वयणकउसल-सुगुरू सुद्धसीलं विउलो विहवो।
कलाणेउण्णं महुर-वाणी सयणासणाणि तहा।।509।।

आरोग्ग-दिग्घाउ-वरसंगदी णाणविड्ढी सुखेत्तं च।
सुंदरिमा सुइत्थी य, सुभिच्च-संताण-बंधुजणा।।510।।

सुवत्थाभूसणाइं, विवेगो य पुण्णकज्जसंजोगो।
धम्मभावो चित्तम्मि, णो संभवो विणा पुण्णेण।।511।।

परोपकार, करुणा, वात्सल्य, तत्त्वचिंतन, शांति, उदारता, समता व सहिष्णुता आत्म सखा के समान थे।।504।। उनकी मधुर हित-मित वाणी, कला निपुणता, लावण्य, कामदेव के समान अनुपम सौंदर्य आदि देह के गुण सेवक के समान थे।।505।। वे मर्यादित व अनुशासित राजा शीतलनाथ त्रयी, वार्ता, आन्वीक्षिकी व दंडनीति; इन राजविद्याओं से युक्त थे।।506।। काम, क्रोध, मान, लोभ, मद व हर्ष इन छः अंतरंग शत्रुओं से रहित वे राजा शीतलनाथ जयवंत थे।।507।। उनका राज्य राजा, मंत्री, किला, कोष, देश, सेना व मित्र इन सात अंगों से लोक में सुशोभित था।।508।। सच ही है जिनधर्म, वचन कौशल, श्रेष्ठ गुरु, शुद्ध शील, विपुल वैभव, कला नैपुण्य, मधुर वाणी, शयन, आसन, आरोग्य, दीर्घायु, श्रेष्ठ संगति, ज्ञानवृद्धि, सुक्षेत्र, सौंदर्य, अच्छी स्त्री, अच्छे सेवक, संतान, बंधुजन, श्रेष्ठ वस्त्राभूषण, विवेक, पुण्य कार्य का संयोग तथा चित्त में धर्म का भाव, पुण्य के बिना संभव नहीं है।।509-511।।

मालिनी छंद

जिणसुदसुमुणीणं वा णिमित्तेण पुण्णं।
णिअडभविजणेहिं मो करिज्जंति णिच्चं।।
इहपरभवसोक्खं ते भवी पाविदूणं।
परमसिवपदं पप्पोंति पारंपरेणं।।512।।

निकट भव्य जनों को नित्य ही जिनेंद देव, जिन श्रुत व निर्ग्रंथ मुनियों के निमित्त से पुण्य करना चाहिए। पुण्यार्जन करने वाले वे भव्य जीव इस भव व परभव में सुख प्राप्त कर परंपरा से परम मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं।।512।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में भगवान् के विवाह, राज्याभिषेक व राज्य संचालन का वर्णन करने वाला नवम सर्ग पूर्ण हुआ।

लौकांतिक देवों द्वारा वैराग्य अनुमोदना

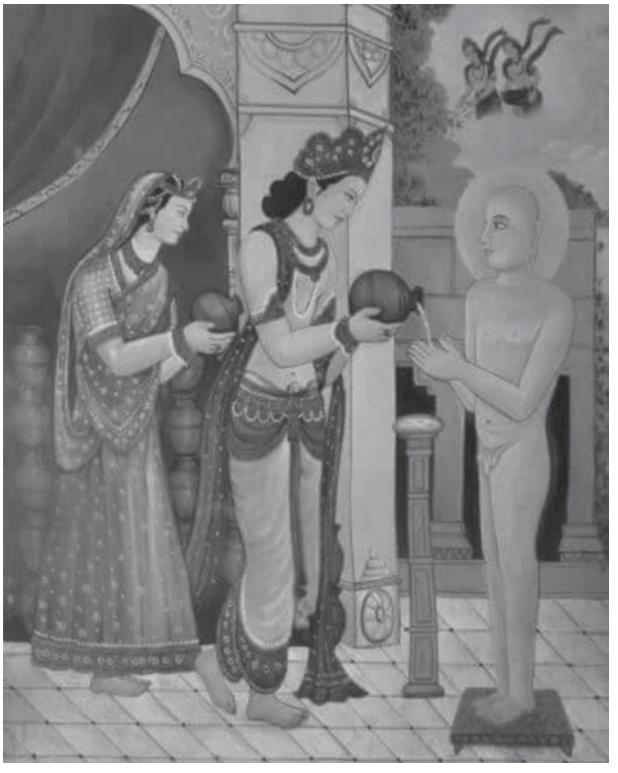

प्रथम आहारचर्या

वस्त्राभूषण त्याग एवं दिगम्बर दीक्षा

दशम-सग्गो

आणंदेण गदेसुं, पणहत्तरि-सहस्स-पुव्व-वस्सेसु।
एयदा सिरिसीयलो, गदो काणणविहारत्थं दु।।513।।

तत्थ तिण-रुक्खादी य, पावरिया ओसाअबिंदूहिं दु।
सहसा इंदधणुहीव, विणस्सीअ अक्ककिरणेहिं।।514।।

पस्सिय पागददस्सं, तं विआणीअ णस्सर-संसारं।
भवतणभोयादो पुण, चिंतीअ विरत्तचित्तेणं।।515।।

रंभारुक्खोव्व सार-हीणो दुक्खपूरिदो संसारो।
जम्ममरणट्ठाणं च, जालं व चदुगदी दुहदा हु।।516।।

अप्पसुहं असंभवो, संसारम्मि हु कत्थ वि मोहीणं।
मोहहीणा सक्कंति, अणंतसुहं सय पावेदुं।।517।।

सव्वकम्मेसु णिवोव्व, मोहणिज्जं दुक्खहेदू भवम्मि।
जे खयंति मोहं ते, सुद्धप्पं पस्सिदुं सक्का।।518।।

इस प्रकार आनंदपूर्वक पचहत्तर हजार वर्ष पूर्ण बीतने पर एक बार श्री शीतलनाथ जी वन विहार के लिए गए।।513।। वहाँ घास, वृक्षादि ओस की बूंदों से आच्छादित थे। सूर्य की किरणों से अचानक वे ओस की बूंदें इंद्र धनुष के समान नष्ट हो गईं।।514।। उस प्राकृतिक दृश्य को देखकर इस नश्वर संसार को जाना पुनः संसार-शरीर-भोगों से विरक्त चित्त से नश्वर संसार का चिंतन किया।515।। यह संसार केले के वृक्ष के समान सार हीन व दुःखों से पूरित है। यह जन्म-मरण का स्थान है। चारों गतियाँ जाल के समान हैं एवं दुःख देने वाली हैं।।516।। मोही जीवों के लिए संसार में कहीं भी आत्मसुख असंभव है। मोह से हीन जीव ही सदा अनंत सुख प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।।517।। मोहनीय सभी कर्मों में राजा के समान है। वह संसार में दुःख का हेतु है। जो मोह नष्ट करते हैं वे ही शुद्धात्मा को देखने में समर्थ होते हैं।।518।।

देहं तडिदपदणं व, सक्कधणुव्व खणभंगुर-मणिच्चं।
देहे विस्ससंति जे, ते हु अप्पघादगा मण्णे।।519।।

अप्पा अणाइणिहणो, सस्सदो णिच्चो य सिद्धसहावी।
सरीरमोहं विहाय, विदेहि-सुद्धप्पं झाएज्ज।।520।।

सरीरं भवकारणं, कारणं अट्टरुद्दज्झाणाणं।
अहकसायाण बीअं, बहिरप्पस्स णिच्चं दुहदा।।521।।

भोया देहसोसगा, धम्मणासगा पावसंगाहगा।
पुण्णदाहगा विसया, अज्झप्पणाणदाहगा अवि।।522।।

तदा वेरग्गवड्ढग-बारसणुवेक्खा चिंतिदा णिवेण।
पवणेण अग्गीव अणुवेक्खाहि वड्ढदि वेरग्गं।।523।।

अणिच्चसरीरं च धण-धण्णं विहवो ण सस्सदो कस्स वि।
पद-पदिट्ठा रज्जं च, णेव कया वि पुण्णमंतस्स।।524।।

अप्पा हंदि सस्सदो, णाण-दंसण-लक्खण-संजुत्तो य।
सव्वसंजोगिभावा, जम्ममरणकारगा दुहदा।।525।।

यह शरीर बिजली के गिरने के समान या इंद्र धनुष के समान क्षणभंगुर व अनित्य है। जो देह में विश्वास रखते हैं वे आत्मा के घातक माने जाते हैं।।519।। आत्मा अनादिनिधन, शाश्वत, नित्य व सिद्ध स्वभावी है। अत: शरीर के मोह का त्यागकर देह से रहित सिद्ध शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिए।।520।। शरीर संसार का कारण है। वह आर्त्त व रौद्र ध्यान का कारण भी है। वह शरीर पाप और कषायों का बीज है, बहिरात्मा के लिए नित्य दु:ख देने वाला है।।521।। भोग देह का शोषण करने वाले, धर्म के नाशक, पापों के संग्राहक, पुण्य को दहन करने वाले हैं। पंचेंद्रिय के विषय अध्यात्म ज्ञान को जलाने वाले हैं।।522।। तब राजा ने वैराग्य वर्द्धक द्वादशानुप्रेक्षा का चिंतन किया। जैसे वायु से अग्नि संवर्द्धित होती है वैसे ही अनुप्रेक्षाओं से वैराग्य संवर्द्धित होता है।।523।। शरीर अनित्य है, धन-धान्य अनित्य हैं। किसी पुण्यवान् का भी वैभव, पद-प्रतिष्ठा व राज्य भी शाश्वत नहीं है।।524।। आत्मा निश्चय से शाश्वत है, ज्ञान-दर्शन लक्षण से युक्त है। सभी संयोगी भाव जन्म-मरण के कारक व दु:ख देने वाले हैं।।525।।

इह संसारम्मि को वि, णो सरणभूदो कस्स वि जीवस्स।
इंदहमिंद-चक्की वि, हलि-सुमरादी तह णस्सरा।।526।।

सुद्धप्पा जिणधम्मो, परमेट्ठी पत्तेयं भव्वाणं।
सस्सदसरणभूदा य, णेव पोग्गलविहवो रागी।।527।।

अक्कमंत-सीहादो, मियं रक्खिदुं णो को वि समत्थो।
जह तह आउक्खयम्मि, पाणं रक्खिदुं णेव को वि।।528।।

जीवा परिभमंति चदु-गदीसु चउविहविवागिकम्मेहिं।
तिविहकम्मबंधेहिं, अट्ठविहदव्वकम्मेहिं य।।529।।

जावप्पे संसारो, असंभवो दु सुद्धप्पसुहं ताव।
जीवो वसदे भवम्मि, संसारो ण वसेज्ज जीवे।।530।।

कम्मजुदा संसारी, कम्मविहीणा सुद्धप्पा सिद्धा।
सस्सदसहावजुत्ता, णियलपरमप्पा णादव्वा।।531।।

एक्को करेदि कम्मं, एक्को चिय भुंजेदि तस्स फलं च।
जदि बंधदि असुहकम्म-मच्चंतदुहं भुंजेदि तो।।532।।

किसी भी जीव के लिए इस संसार में कोई भी शरणभूत नहीं है। इंद्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र व कामदेव आदि भी नाशवान् हैं।।526।। प्रत्येक भव्य के लिए शुद्धात्मा, जिनधर्म व परमेष्ठी शाश्वत शरणभूत हैं। पुद्गल वैभव व रागी जीव कदापि भी शरणभूत नहीं हैं।।527।। जिस प्रकार आक्रमण करते हुए सिंह से मृग की रक्षा करने में कोई भी समर्थ नहीं है उसी प्रकार आयु का क्षय होने पर प्राणों की रक्षा करने में कोई भी समर्थ नहीं है।।528।। जीव चारों प्रकार के विपाकी कर्म, (जीवविपाकी, पुद्गल विपाकी, क्षेत्रविपाकी व भवविपाकी), तीन प्रकार के कर्म बंध और आठ प्रकार के द्रव्य कर्मों से चारों गतियों में परिभ्रमण करते हैं।।529।। जब तक आत्मा में संसार है तब तक शुद्धात्मा का सुख असंभव है। जीव संसार में रहता है, संसार जीव में नहीं रहना चाहिए।।530।। कर्म से युक्त संसारी कहे जाते हैं, कर्म से विहीन शुद्धात्मा, सिद्ध, शाश्वत स्वभाव से युक्त निकल परमात्मा जानने चाहिए।।531।। एक ही कर्म करता है और एक ही उसके फल को भोगता है। यदि जीव अशुभ कर्म का बंध करता है तो वह अत्यंत दु:खों को भोगता है।।532।।

जिणसुदमुणिधम्माणं, णिमित्तेण जो विढवदि पुण्णवरं।
सो होदि मोक्खमग्गी, पावदि सग्गाइसुहविहवं॥533॥

णिक्कंखं पुण्णं सय, सिवमग्ग-कारणं भणिदं समये।
उक्किट्ठपुण्णफलादु, जीवो लहदि अरिहाइपदं॥534॥

पुण्णपावहीणा जे, तेहि पाविदा सस्सदणिव्वाणं।
परमपुण्णरासीए, भवी लहदि विस्सपुज्जपदं॥535॥

जीवेगेणं विढत्त-कम्मं भुंजिदु-मण्णो णो सक्को।
तं पुण्णं पावं वा, सो उवज्जगो चिय भुंजेदि॥536॥

सयं भुंजेदि जीवो, सग-विढत्त-सुहासुह-कम्माइं च।
ओकड्ढण-मुक्कड्ढण-मुदीरणं संकमणं करदि॥537॥

मे अप्पादो अण्णा, सव्वपदत्था अणाइयालादो।
देहो य देहधम्मो, णो कया वि सुद्धप्पधम्मो॥538॥

सुहपदत्था अवि होंति, असुइमया खलु देहसंसग्गेण।
कहं सक्कदे देहो, मे अप्पं सुद्धं करेदुं॥539॥

जो जिनेंद्र प्रभु, श्रुत, निर्ग्रन्थ मुनि व जिनधर्म के निमित्त से श्रेष्ठ पुण्य का अर्जन करता है वह मोक्षमार्गी होता है व स्वर्गादि के शुभ वैभव को प्राप्त करता है॥533॥ जिनागम में निःकांक्ष पुण्य सदा ही मोक्षमार्ग का कारण कहा गया है। उत्कृष्ट पुण्य के फल से जीव अरिहंतादि के पद को प्राप्त करता है॥534॥ जो पुण्य व पाप से हीन हुए उन्होंने शाश्वत निर्वाण प्राप्त किया। भव्य जीव परम पुण्य राशि से विश्व पूज्य पद को प्राप्त करता है॥535॥ एक जीव के द्वारा अर्जित कर्म को अन्य जीव भोगने में समर्थ नहीं हैं। उस पुण्य या पाप को वह भोगता है जिसने उसे अर्जन किया है॥536॥ जीव अपने द्वारा उपार्जित शुभ व अशुभ कर्मों को स्वयं ही भोगता है, स्वयं ही उसका उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा व संक्रमण करता है॥537॥ अनादिकाल से संसार के सभी पदार्थ मेरी आत्मा से अन्य हैं। देह और देह का धर्म कभी भी शुद्धात्मा का धर्म नहीं है॥538॥ शरीर के संसर्ग से शुभ पवित्र पदार्थ भी अशुचिमय-अपवित्र हो जाते हैं। यह शरीर मेरी आत्मा को शुद्ध करने में किस प्रकार समर्थ हो सकता है॥539॥

सपुरिसट्ठबलेण हं, सगप्पं करिदुं णिम्मलं सक्को।
सम्मत्ताइसुहगुणा, लहेज्ज तवेण कम्मं दहिय॥540॥

मिच्छत्तविरदिपमाद-कसायजोगा य आसवणिमित्तं।
आसवो बंधहेदू, संसारे परिभमणहेदू॥541॥

जीवा सक्कंति कम्म-णिरोहणस्स लहिय सम्मत्ताइं।
संवरं विणा ण होदि, णिज्जरा णेव मोक्खमग्गो॥542॥

महव्वयसमिदिगुत्ती, चरियधम्मादी दु संवरहेदू।
ते णेव लहिदा मए, तं भवे भमिदं अणादीदु॥543॥

णिज्जराए सुहेदू, इचछाणिरोहगतवो बेविहो य।
अग्गिणा दु सुवण्णं व, तवेण अप्पा होदि सुद्धो॥544॥

सुद्धप्पझाणलीणं, होदुं समत्थो रयणत्तयजुदो।
णासिदुं सव्वकम्मं, पप्पोदुं सुद्ध-सिद्धगदिं॥545॥

ससमये कम्मसडणं, सविवागि-णिज्जरा होदि सव्वाण।
वयतवज्झाणेहि जा, सा अविवागी मोक्खहेदू॥546॥

अपने पुरुषार्थ के बल से मैं ही अपनी आत्मा को निर्मल करने में समर्थ हूँ। अब तप के द्वारा कर्मों का क्षय करके सम्यक्त्व आदि शुभ गुणों को प्राप्त करना चाहिए॥540॥ मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योग आस्रव के निमित्त हैं। आस्रव बंध का कारण है तथा संसार में परिभ्रमण का हेतु है॥541॥ जीव सम्यक्त्व आदि को प्राप्त करके कर्म निरोध करने के लिए समर्थ होते हैं। संवर के बिना निर्जरा नहीं होती और ना ही मोक्षमार्ग होता है॥542॥ महाव्रत, समिति, गुप्ति, चरित्र व धर्म आदि संवर के कारण हैं। वे महाव्रत आदि मैंने कभी प्राप्त नहीं किए इसलिए अनादिकाल से संसार में भ्रमण कर रहा हूँ॥543॥ तप निर्जरा का कारण है। इच्छाओं का निरोध करना तप है। वह तप दो प्रकार का है जैसे अग्नि से स्वर्ण शुद्ध होता है उसी प्रकार तप से आत्मा शुद्ध होती है॥544॥ रत्नत्रय से युक्त ही शुद्धात्म ध्यान में लीन होने में, सर्व कर्मों का नाश करने में तथा शुद्ध सिद्ध गति को प्राप्त करने में समर्थ होता है॥545॥ अपने समय पर कर्मों का झड़ना सविपाकी निर्जरा होती है, वह सभी संसारी जीवों के होती है। तथा जो निर्जरा व्रत, तप व ध्यान के द्वारा होती है वह अविपाकी निर्जरा कही जाती है, यह मोक्ष का हेतु है॥546॥

लोओ पुरिसायारो, अकिट्टिमो चोद्दसरज्जुत्तुंगो।
तिण्णिसयतेदालि-घणरज्जू तहा अणाइणिहणो॥547॥

जीवो इह लोयम्मि दु, भमेदि मिच्छत्ताइ-विहावेणं।
सम्मत्त-सण्णाण-सच्चरियाणि उहयमोक्खमग्गो॥548॥

तसपज्जाय-दुल्लहो, सण्णिपणिंदिय-णरगदी दुल्लहा।
दुल्लहं जिणधम्मं तह, संगदी जिणसुदसाहूणं॥549॥

दुल्लहमणुव्वदं तह, महव्वदं अइदुल्लहा बोही दु।
केवलणाणाइ-गुणा, दुल्लहो सुद्धप्पसहावो॥550॥

धम्मो दुविहो णेयो, भेयादो ववहार-णिच्छयाणं।
पढमो पुण्ण-कारणं, अघणासगो सिवपहरूवो॥551॥

सव्वकम्मक्खयेदुं, समत्थो सव्वदा णिच्छयधम्मो।
तं धम्मं लहिदूणं, णस्सिस्सामि सव्वकम्माणि॥552॥

सुद्धसहावो धम्मो, मम सुद्धप्पस्स णेव विहावो य।
विहावो भव-कारणं, सहावो णिच्चसिद्धरूवो॥553॥

यह लोक पुरुषाकार, अकृत्रिम, अनादिनिधन चौदह राजू ऊँचा एवं तीन सौ तैंतालिस घन राजू प्रमाण है॥547॥ मिथ्यात्व आदि विभाव से जीव इस लोक में परिभ्रमण करता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र की एकता ये उभय मोक्षमार्ग है। (व्यवहार रत्नत्रय व्यवहार मोक्षमार्ग व निश्चय रत्नत्रय निश्चय मोक्षमार्ग है।)॥548॥ त्रस पर्याय दुर्लभ है, संज्ञी पंचेंद्रिय होना दुर्लभ है, मनुष्य गति दुर्लभ है, पुनः जिनधर्म प्राप्त होना दुर्लभ है एवं जिनदेव, श्रुत व साधुओं की संगति अत्यंत दुर्लभ है॥549॥ तदनंतर अणुव्रत दुर्लभ हैं, महाव्रत प्राप्त करना दुर्लभ है, उससे बोधि (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) दुर्लभ हैं, केवलज्ञानादि गुण दुर्लभ हैं पुनः शुद्धात्म स्वभाव दुर्लभ है॥550॥ व्यवहार व निश्चय के भेद से धर्म दो प्रकार का जानना चाहिए। प्रथम व्यवहार धर्म पुण्य का कारण, पापों का नाशक व मोक्ष मार्ग रूप है॥551॥ सब कर्मों का क्षय करने में सदा निश्चय धर्म समर्थ होता है। उस धर्म को प्राप्त करके मैं सर्व कर्मों का नाश करूँगा॥552॥ मेरी शुद्धात्मा का शुद्ध स्वभाव धर्म है, विभाव मेरी शुद्धात्मा का धर्म नहीं है। विभाव संसार का कारण है, स्वभाव नित्य व सिद्ध रूप है॥553॥

सीयलजिणेण इत्थं, पडिसंविक्खिदा बारसणुवेक्खा।
तस्स विरत्ती मुणिदा, पुरंदरेण ओहिणाणेण॥554॥

तदा अक्खविसयादो, विरत्तो विरागी बंभयारी य।
लोगंतिगसुरागदा, जिणवेरग्गस्सणुमोयगा॥555॥

पंचमबंभदिवं ते, वसंते ते एगभवावयारी।
सुदब्भासी संता य सुहलेस्साजुदा देवरिसी॥556॥

सत्तरसहस्स-चउसय-विंसदि-समहिद-चदुलक्खपमाणं।
चउवीसदिसासुं ते, णिवसंति लोयंतिगदेवा॥557॥

जिणिंदपूयणं कट्टु पुप्फंजलिखिवंतलोयंतिगेहि।
आरंभिदा जिणथुदी, भत्तीइ परमविसुद्धीए॥558॥

धम्मतित्थ-पवत्तयो, मोक्खपहं दंसावह हे सामी।
तवेण मोहं णासह, विजयह सव्वकम्मसेण्णं दु॥559॥

कम्मसत्तुं जयेदुं, तप्परो तुमं धण्ण-सयंबुद्धो।
वेरग्गेण संभवो, वीयरायत्तं होज्जा चिय॥560॥

इस प्रकार श्री शीतलनाथ जिनेंद्र ने बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया। पुरंदर-सौधर्मेंद्र ने अवधि ज्ञान के द्वारा उनकी विरक्ति को जान लिया॥554॥ उसी समय इंद्रियविषयों से विरक्त, वैरागी, ब्रह्मचारी जिनेंद्र भगवान् के वैराग्य की अनुमोदना करने वाले लौकांतिक देव स्वर्ग से आ गए॥555॥ वे एक भवावतारी, श्रुताभ्यासी, शांत, शुभ लेश्या से युक्त देवर्षि पंचम ब्रह्म स्वर्ग के अंत में निवास करते हैं॥556॥ चार लाख सत्तर हजार चार सौ बीस प्रमाण वे लौकांतिक देव चौबीस दिशाओं में निवास करते हैं॥557॥ **विशेषार्थ**—उन चौबीस कुल वाले लौकांतिक देव के चार कुल चार दिशाओं में, चार कुल चार विदिशाओं एवं प्रत्येक दिशा व विदिशा के मध्य दो-दो कुल अर्थात् सोलह कुल इस प्रकार चौबीस दिशाओं में चौबीस कुल निवास करते हैं। जिनेंद्र भगवान् की पूजन करके पुष्पांजलि छोड़ते हुए लौकांतिक देवों ने परम विशुद्धि पूर्वक भक्ति से जिनेंद्र भगवान् की स्तुति आरंभ की॥558॥ हे स्वामी! तप के बल से मोह का नाश कीजिए, सर्व कर्म रूपी सेना पर विजय प्राप्त कीजिए। हे धर्म तीर्थप्रवर्तक! आप मोक्षमार्ग प्रदर्शित कीजिए॥559॥ हे प्रभु! आप धन्य हैं, स्वयंबुद्ध हैं जो कर्म शत्रु को जीतने के लिए तत्पर हुए हैं। वैराग्य से ही वीतरागता संभव है॥560॥

सीयलणाहस्स थुदिं, कडुअ पोसिय वेरग्गपरिणामं।
गच्छीअ सगणिवासं, वीयरायबीअ-वेरग्गं।।561।।

सीहासण-कंवणादु, कल्लाणगस्स आगदा दिवादो।
सव्विंद-देव-देवी, जयघोसकोलाहलेणं च।।562।।

अह तवकल्लाणगस्स, महहिसेगं खीरसायरजलेण।
इंदाइ-देवेहिं च, कुव्विदं अइउच्छाहेणं।।563।।

अलंकिदं दिव्ववत्थ-भूसणेहिं देवरायेणं पुण।
सगसेट्ठ-सुपुत्तस्स दु, रज्जं दाएज्जा जिणिंदो।।564।।

कहीअ हे पुत्तो रज्जं करेज्ज सवरहिदभावणाए।
कद्दमादो पउमं व, विरत्तभावेण णीदीए।।565।।

बहिरज्जं णेव तुज्झ, णेव तव सहावो कया वि जाणह।
अप्पविहवो सस्सदो, तं पप्पोदुं जदेज्ज सया।।566।।

अह परिवारजणाणं, लहिय अणुमदिं दिक्खाइ दुरुहीअ।
देव-णिम्मिद-रयणमय-उत्तमसुक्कपहासिविगाइ।।567।।

श्री शीतलनाथ प्रभु की स्तुति करके उनके वैराग्यपूर्ण परिणामों का पोषण कर वे अपने निवास स्थान को चले गए। यथार्थ में वैराग्य वीतरागता का बीज है।।561।। तभी सिंहासनों के कंपायमान होने से, स्वर्ग से सभी इंद्र देव-देवियाँ जयघोष व अत्यंत कोलाहल से तप कल्याणक के लिए आ पहुँचे।।562।। फिर इंद्रादि देवों ने तीर्थंकर प्रभु के तप कल्याणक के लिए उनका अति उत्साह से क्षीर सागर के जल से महाभिषेक किया।।563।। पुनः देवराज इंद्र ने भगवान् को दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया। अनंतर श्री जिनेंद्र प्रभु ने अपने श्रेष्ठ सुपुत्र के लिए राज्य प्रदान किया।।564।। पुनः कहा हे पुत्र! स्व-पर हित की भावना से न्याय-नीतिपूर्वक इस प्रकार विरक्त भाव से राज्य करना जैसे कमल कीचड़ में रहता हुआ भी उससे अस्पृष्ट रहता है।।565।। यह बाह्य साम्राज्य तुम्हारा नहीं है और ना ही यह तुम्हारा स्वभाव है ऐसा जानो। आत्मा का वैभव ही शाश्वत है उसी को प्राप्त करने के लिए सदा यत्न करना चाहिए।।566।। फिर श्री शीतलनाथ प्रभु दीक्षा के लिए परिवार जनों की अनुमति लेकर देवों द्वारा निर्मित रत्नमयी उत्तम शुक्रप्रभा पालकी पर आरूढ़ हुए।।567।।

पढमं राया चलीअ, सत्तपदाणि तं सिविगं गहित्ता।
पुण विज्जाहरा तहा, सत्तपदाइं आयासम्मि।।568।।

खंधारोविदं कडुअ, वेमाणिगा य भवणत्तिय-देवा।
जयघोसं कोलाहल-गायणं अइथुदिं करंता।।569।।

कोडिवज्जरवेहिं च, देवीण विलासजुदणच्चेहि सह।
पहुप्पीअ हरिसेण सहेदुगं काणणं घोरं दु।।570।।

पुव्वम्मि देवट्ठविद-फडिगमणिमय-सिलाए तत्थ।
पुव्वाहिमुहं होच्चा, विराजीअ जिणो विसुद्धीइ।।571।।

तदा रुक्खोव्व मूका, कइवय-जणा सोगजुत्ता ठाही।
अमुल्ल-णिहीइ हरणे, जायग-दसा व्व ताण दसा दु।।572।।

पडंत-पत्ताइं पहु-विजोगे रुक्खाण अस्सुपदणं व।
पडंत-ओसबिंदू य, पइडीए करुण-कंदणं व।।573।।

होज्ज पीद-आयासो, रवी तं दिस्सं पस्सिदु-मसक्को।
पलास-पत्तं व दिसा, दुह-विजोग-मिस्सिद-भावेण।।574।।

भगवान् की उस पालकी को सर्वप्रथम राजा लोग सात कदम लेकर चले और फिर विद्याधर आकाश में सात कदम चले।।568।। पुनः वैमानिक और भवनत्रिक देव उस पालकी को अपने कंधों पर रखकर जयघोष करते हुए अत्यंत शोर, गायन, अतिस्तुति करते हुए, करोड़ों वाद्यों की ध्वनि के साथ तथा देवियों के विलास युक्त नृत्यों के साथ हर्षपूर्वक सहेतुक नामक घोर वन में पहुँचे।।569-570।। वहाँ पहले ही देवों द्वारा स्थापित स्फटिक मणिमय शिला पर पूर्व की ओर मुख करके श्री शीतलनाथ जिन विशुद्धिपूर्वक विराजमान हुए।।571।। जब श्री शीतलनाथ भगवान् वन की ओर चले थे उस समय शोक युक्त कितने ही लोग वृक्ष के समान मूक स्थित रह गए। जैसे अमूल्य निधि के छीन लेने पर याचक की दशा होती है, वही दशा उस समय उन सबकी थी।।572।। वृक्षों से गिरते हुए पत्ते ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वृक्ष प्रभु के वियोग में अश्रुपात ही कर रहे हों। गिरती हुई ओस की बूँदें मानो प्रकृति का करुण क्रंदन ही हो। उस समय आकाश पीला हो गया था सूर्य उस दृश्य को देखने में समर्थ नहीं था। दुःख और वियोग के मिश्रित भाव से दिशाएँ भी पलाश के पत्ते के समान पीली पड़ गई थीं।।573-574।।

कइवयस्सुपूरिदा य, कइवया सामिविहवेणं तुट्ठा।
कइवय-अइसोगजुदा, कइवय-गंभीरा सदित्थी।।575।

रायपरिवारस्स चिय, पहुप्पीअ तवकल्लाणुच्छवस्स।
सुहपूयणसामग्गिं, गहिदूणं अरण्णे तदा हु।।576।।

अह उहयपरिग्गहं च, उज्झित्तु सिद्धसक्खीए जिणेण।
सिद्धं पणमिय करिदं, पंचमुट्ठिकेसलुंचणं दु।।577।।

माघकिण्हबारसम्मि, पुव्वासाढे संझाबेलाए।
तियुववासं गहित्ता, जादो जहाजादो साहू।।578।।

परमविसुद्धीए चिय, मदिसुदोहिणाणजुत्तजिणिंदस्स।
उप्पण्णं मणपज्जय-णाणं वि तदा अइविसुद्धं।।579।।

सिरिजिणिंदस्स केसा, रयणकंडे ठविदा इंदेहि पुण।
समायरेणं खिविदा, अइणिम्मलखीरसायरम्मि।।580।।

तित्थयरेणं सहिदो, सहस्सभूवदीहिं तदा गहिदा।
सगप्पणाणबलेणं, णिग्गंथ-जहाजाद-दिक्खा।।581।।

उस समय राजपरिवार की कितनी ही सती स्त्रियाँ अश्रु बहा रही थीं, कितनी ही स्त्रियाँ अपने स्वामी के वैभव से (देवों द्वारा किए गए सम्मान से) संतुष्ट थीं, कितनी ही स्त्रियाँ अति शोक से युक्त थीं, कितनी ही स्त्रियाँ गंभीर थीं। वे सभी तप कल्याणक के उत्सव के लिए शुभ पूजन की सामग्री को ग्रहण कर वन में पहुँचीं।।575-576।। फिर जिनेंद्र भगवान् ने दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करके सिद्धों को प्रणाम कर सिद्धों की साक्षी में पंचमुष्टि केशलोंच किया और माघ कृष्ण द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में संध्या बेला में तीन उपवास को ग्रहण कर यथाजात दिगंबर साधु हुए।।577-578।। तभी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान से युक्त जिनेंद्र प्रभु की परमविशुद्धि से उनके अति विशुद्ध मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ।।579।। पुनः इंद्रों ने रत्न के पिटारे में श्री जिनेंद्र भगवान् के केशों को रख लिया और अत्यंत आदर सहित अति निर्मल क्षीर सागर में उन्हें डाल दिया।।580।। तब आत्मज्ञान के बल से तीर्थंकर प्रभु के साथ हजार राजाओं ने निर्ग्रंथ यथाजात दीक्षा को ग्रहण किया।।581।।

सग-सग-णिवासठाणं, पच्चागच्छीअ सव्वा भत्तीइ।
जिणच्चणं किच्चा तव-कल्लाणवत्तं कुव्वंता।।582।।

अज्जंतं सग्गादो, आहरिदवत्थाभूसणाइं चिय।
देवदत्तं भोयणं, गहिदं सीयलणाहजिणेण।।583।।

सव्वं उज्झिय अहुणा, पढमवारं हंदि पुढविलोयम्मि।
महामुणिणा विहरिदं, जोगे पुण्णे समत्तेणं।।584।।

सुहविट्टिपरिसंखाण-तवेण आहारचरिया-णिमित्तं।
अरिट्ठणयरं पडि खलु, जत्थ णिव-पुणव्वसू आसी।।585।।

सरल-सहज-सुहकोमल-भावजुदणिवेण णवहाभत्तीइ।
सद्धाइ-सत्तगुणेहि, दत्तं चिय आहारदाणं।।586।।

पडिगहमुच्चट्ठाणं, पक्खालणं पूयणं पणामं च।
सुद्धी मणवयणतणाहाराणं णवहा भत्ती य।।587।।

सद्धा भत्ती तुट्ठी, अलुद्धत्त-संत-खमा विवेगो य।
दायगस्स सत्तगुणा, संसारवारिहिसोसगा दु।।588।।

संसारुदहीदो जो, समत्थावलंबणो णिस्सरेदुं।
खीरण्णाहारं चिय, दत्तं च तस्स जगसामिस्स।।589।।

पुनः सभी भक्ति से जिनार्चना करके तप कल्याणक की वार्त्ता करते हुए अपने-अपने निवास स्थान पर वापिस लौट गए।।582।। श्री शीतलनाथ जिनेंद्र ने आज तक स्वर्ग से लाए गए वस्त्राभूषण और देवों द्वारा दिए गए भोजन को ही ग्रहण किया था।।583।। अब सब कुछ त्यागकर योग के पूर्ण होने पर प्रथम बार महामुनिराज ने आहार चर्या के निमित्त समत्व भाव से पृथ्वीलोक पर शुभ वृत्तिपरिसंख्यान तप के साथ अरिष्ट नगर की ओर विहार किया। जहाँ का राजा उस समय पुनर्वसु था।।584-585।। उस सरल, सहज, शुभ कोमल भावों से युक्त राजा ने नवधा भक्ति और श्रद्धा आदि सात गुणों के साथ उन श्री शीतलनाथ भगवान् को आहार दान दिया।।586।। पड़गाहन, उच्चस्थान, पाद प्रक्षालन, पूजन, प्रणाम, मनशुद्धि, वचनशुद्धि और काय शुद्धि ये नवधा भक्ति हैं।।587।। श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, अलुब्धता, सत्त्व, क्षमा और विवेक ये दाता के सात गुण संसार रूपी समुद्र का शोषण करने वाले हैं।।588।। जो संसार रूपी सागर से बाहर निकलने के लिए समर्थ आलंबन हैं उन जगत् के स्वामी को क्षीरान्न का आहार राजा ने दिया।।589।।

अह आहारे पुण्णे, पंच-अच्चेअरं सग्गदेवेहि।
समणुजाणंतेहिं च, आरंभिदा रयणवरिसा हु।।590।।

उक्कोसेण पणवीस-अद्धकोडि-रयणाणि वरिसेज्जा दु।
पारणादिणम्मि खादु, जहण्णेणं सहस्सभागो तहा।।591।।

रयणवरिसाए सह, पुप्फवरिसा वज्जकोलाहलो य।
जयजयघोसो तह मंद-सुगंधिद-वाउ-संचारो।।592।।

अहो सुदायगो अहो, उत्तमपत्तो अहो दाणं तदा।
उच्चारिदं देवेहि, पुप्फंजलिं खिवंतेहिं च।।593।।

आहारदाणमहिमा, अवत्तव्वा दु छउमत्थजणेहिं।
लहदि तस्स समणुन्नो, वि सिवहेदुं अइसयपुण्णं।।594।।

अह सघणविविणं गडुअ, उक्किट्ठं आदावणाइ-जोगं।
धरीअ उक्किट्ठतवं, कम्मकलंकं विणासेदुं।।595।।

पंचमहव्वयं पंच-समिदी तिगुत्ती सयय-मोणेणं।
पालिदा चिय चउतीस-उत्तरगुणेहिं जुद-मुणिणा।।596।।

फिर आहार के पूर्ण होने पर अनुमोदना करते हुए स्वर्ग के देवों ने रत्नों की वर्षा आरंभ की।।590।। पारणा के दिन आकाश से उत्कृष्ट से 12.5 करोड़ रत्नों की तथा जघन्य से उसके हजारवें भाग रत्नों की वृष्टि होती है।।591।। रत्नवृष्टि के साथ पुष्पों की वृष्टि, वाद्य यंत्रों का कोलाहल, जय-जय घोष एवं मंद सुगंधित वायु का संचार हुआ।।592।। तभी अहो दाता, अहो उत्तम पात्र, अहो दान, इस प्रकार पुष्पांजलि छोड़ते हुए देवों ने उच्चरित किया।।593।। छद्मस्थों के द्वारा आहार दान की महिमा अव्यक्तव्य है। उसका अनुमोदक भी मोक्ष के कारणभूत अतिशय पुण्य को प्राप्त करता है।।594।। अनंतरं सघन वन में जाकर कर्म कलंक के नाश के लिए उत्कृष्ट आतापन आदि योग व उत्कृष्ट तप धारण किया।।595।। चौंतीस उत्तरगुणों से युक्त मुनि ने अनवरत मौन से पाँच महाव्रत, पाँच समिति व तीन गुप्तियों का पालन किया।।596।।

वरिसायालम्मि रुक्ख-मूले सीदम्मि य सरिदा-तीरे।
गिम्हम्मि गिरिसिहरम्मि, जिणकप्पि-मुणिणा झायिदं दु।।597।।

दुविहसंजम-पालंत-तप्पर-जदी खयिदुं मोहरायं।
परमविसुद्धीए चिय, आरोहीअ खवगसेणिं दु।।598।।

शिखरिणी छंद

महाजोगिस्सासी, कवय - इव - बेसंजमसुहा
सुहं झाणं अत्थं व सगुणपयं रक्खिदु-महो।
रहारूढंतो सो अतिखमविसुद्धीइ सददं
रदोसण्णाणेणंरदि-अरदि-सत्तूचजयिदुं।।599।।

रथोद्धत्ता छंद

तित्थणामपइडीइ सत्तए, गब्भजम्मतव-उच्छवा सुहा।
होज्ज जस्स सिरि सीयलो दु मे, सीयलत्तमह देज्ज सो सया।।600।।

वे जिनकल्पी मुनिराज वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे, शीतकाल में नदी के किनारे और ग्रीष्म काल में पर्वत के शिखर पर ध्यान किया करते थे।।597।। मोहराजा के क्षय करने में तत्पर यति दोनों प्रकार के संयम का पालन करते हुए परम विशुद्धि से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए।।598।।

उन महायोगी के दोनों (इंद्रिय व प्राणी) संयम कवच के समान थे। निज गुणरूपी प्रजा की रक्षा के लिए शुभ ध्यान अस्त्र के समान था। वे निरंतर सम्यग्ज्ञान के द्वारा अति समर्थ विशुद्धि के रथ पर आरूढ़ होते हुए राग-द्वेष रूप शत्रुओं को जीतने में रत थे।।599।।

तीर्थंकर नाम प्रकृति के सत्ता में होने पर जिन श्री शीतलनाथ भगवान् के गर्भ, जन्म व तप ये तीन शुभ उत्सव-कल्याणक हुए वे श्री शीतलनाथ भगवान् मुझे सदा शीतलता प्रदान करें।।600।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में श्री शीतलनाथ स्वामी के तपकल्याणक व आहार दान का वर्णन करने वाला दशम सर्ग पूर्ण हुआ।

समवशरण रचना

एयारसम-सग्गो

अपमत्तट्ठाणादो, अहपवत्तकरणं किच्चा कमसो।
अंतोमुहुत्ते तदा, अपुव्वकरणट्ठाणवत्ती॥601॥

तत्थ ण-खयीअ इइडिं, णिज्जरीअ हि असंखेज्जगुणिदं तु
पत्तेयं समये तह, एगेग-अंतोमुहुत्तम्मि॥602॥

एगेगट्ठिदिकंडग - घाद - करंतो संखेज्जसहस्सं।
ठिदिकंडं च घादीअ, तत्तिय-ठिदिबंधवसरणं दु॥603॥

तत्तो संखेज्जगुणिद-अणुभागकंडग-घादं करीअ दु।
पुण अणिवत्तिट्ठाणे, पविसिय ठिदिकंडगघादाइं॥604॥

संखेज्जभागगंतं खु, पुव्वं व संखेज्जभागयालम्मि।
थाणगिद्धितिगं णरयगदिं तिरियगदिं चउजादिं॥605॥

दुणिरयतिरियगदि-आणुपुव्वी आदवदुगं थावरतिगं।
सोडसपइडिं खयित्तु, अंतोमुहुत्तम्मि गलिदम्मि॥606॥

पच्चक्खाणचदुक्कं, अप्पच्चक्खाणचदुक्कं अट्ठं।
सहेण खयीअ पच्छा, एगंतोमुहुत्तं गडुअ दु॥607॥

तब अप्रमत्तगुणस्थान से अधः प्रवृत्तकरण करके क्रमशः अंतर्मुहूर्त में अपूर्वगुणस्थानवर्ती हुए॥601॥ वहाँ एक भी प्रकृति का क्षय नहीं किया अपितु प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित रूप से कर्मों की निर्जरा की। एक-एक अंतर्मुहूर्त में एक-एक स्थिति कांडक घात करता हुआ संख्यात हजार स्थितिकाण्डकों का घात किया और उतने ही स्थितिबंधापसरण किए तथा उनसे संख्यात हजार गुणे अनुभाग कांडकों का घात किया। पुनः अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में प्रविष्ट होकर, उस अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों तक पूर्व अर्थात् अपूर्वकरण के समान ही स्थितिकांडकों का घात आदि किया। पुनः अनिवृत्तिकरण के काल में संख्यात भाग शेष रहने पर स्त्यानगृद्धित्रिक अर्थात् स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, नरकगति, तिर्यंच गति, चार जाति, एकेंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय और चार इंद्रिय जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावरत्रिक-सूक्ष्म, स्थावर व साधारण, इन सोलह प्रकृतियों का क्षय करके अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत हो जाने पर प्रत्याख्यान चतुष्क अर्थात् प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान चतुष्ट अर्थात् अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, इन आठ प्रकृतियों का साथ में ही क्षय किया।

अंतरकरणं किच्चा, चउसंजलणणवणोकसायाणं।
अंतोमुहुत्ते गदे, णउंसगवेदं खयीअ पुण।।608।।
अंतोमुहुत्ते गदे, त्थिवेदं पुण अंतोमुहुत्तगदे।
सवेदभाग-उवंते, पुरिसवेदस्स पुराअणेहि।।609।।
संतकम्मेहि सह सड-णोकसायं जुगवं तदा खयीअ।
समयूण-दु-आवलीइ, गदम्मि पुरिसवेदं पच्छा।।610।।
अंतोमुहुत्ते गदे, कोहं माणं मायासंजलणं।
कमेण खयिय करंतो, अस्सकरणं किट्टिकरणं च।।611।।
सुहुमसंपयायगुणट्ठाणवत्ती होही तस्स चरिमे।
सुहुमलोहं वि खयित्तु, खीणगुणट्ठाणे पविसीअ।।612।।
अंतोमुहुत्ते गदे, दुचरमे णिद्दं पयलं जुगवं च।
खयिय दु चरिमसमयम्मि, सव्वावरणं अंतरायं।।613।।
सुक्कज्झाणग्गिणा हु, घादिकम्मं झामिदूणं होही।
सजोगकेवली जिणो, सव्वदंसी चिय सव्वण्हू।।614।।

पुनः एक अंतर्मुहूर्त जाकर चार संज्वलन और नौ कषायों का अंतकरण करके एक अंतर्मुहूर्त व्यतीत होने पर नपुंसक वेद का क्षय किया। पुनः अंतर्मुहूर्त व्यतीत होने पर स्त्री वेद का क्षय किया। पुनः अंतर्मुहूर्त बीतने पर सवेद भाग के उपांत (द्विचरिम) समय में पुरुषवेद के पुरातन सत्ता रूप कर्मों के साथ 6 नोकषायों का युगपत् क्षय किया। पुनः एक समय कम दो आवली मात्र काल के व्यतीत होने पर पुरुष वेद का क्षय किया। तत्पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त जाकर क्रोध संज्वलन, मान संज्वलन व माया संज्वलन का क्रम से क्षय करके अश्वकर्णकरण व कृष्टिकरण करता हुआ सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानवर्ती हुआ व उसके चरिम समय में लोभ संज्वलन का क्षय करके क्षीण मोह गुणस्थान में प्रवेश किया। तदनन्तर अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत होने पर द्विचरिम समय में निद्रा व प्रचला का युगपत् क्षय करके अपने काल के अंतिम समय में शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा सर्वावरण अर्थात् 5 ज्ञानावरण, 4 दर्शनावरण और 5 अंतराय इन सभी घातिया कर्मों का दहन कर सयोग केवली जिन, सर्वदर्शी व सर्वज्ञ हुए।।602-614।। पौष कृष्ण चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में अपराह्न काल में भद्दिल नगरी के निकट सहेतुक वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।।615।।

भद्दिलणयरिणिअडम्मि, सहेदुगवणम्मि केवलुप्पण्णं।
पुस्स-किण्ह-चोद्दसीइ, अवरण्हे पुव्वासाढाइ॥615॥

जम्मं जरा मिच्चू य, छुहा पिवासा तह मोहो रोसो।
रागो भय-मुव्वेगो, रोगो णिद्दा मदो सेओ॥616॥

खेओ विम्हयो रदी, चिंता इमादु अट्ठदसदोसादु।
रहिदो सीयलणाहो, होही अरिहो वदणीयो॥617॥

कप्पवासी घंटेण, संखघोसेणं तह भवणवासी।
विंतरा पडहरवेहि, जोदिसी सीहणादेणं च॥618॥

केवलणाणुप्पत्तिं, जाणिदूण सगासणकंवणेणं।
खपूरिदजयघोसेण, आगदा जिणिंदपूयणस्स॥619॥

रइदं दु समवसरणं, तीसकोसपमाणं इंदाणाइ।
धणदेण विम्हयकरं, तिलोयलच्छिणिअरं व तदा॥620॥

वसुभहि-बारससहाहि जुद-इंदणीलमयमहीइ ठविदं।
समवसरणं कलहोय-पुंजं व भासीअ खलु तदा॥621॥

चेइयपासाद-खाइ-वल्लि-उववण-धय-सुररुक्ख भूमी।
भवण-सिरिमंडव-मही, अट्ठभूमी इमा सोहीअ॥622॥

सदा वंदनीय अरिहंत श्री शीतलनाथ जिन जन्म, जरा, मृत्यु, भूख, प्यास, मोह, क्रोध, राग, भय, अरति, रोग, निद्रा, मद, पसीना, खेद, विस्मय, रति और चिंता इन अट्ठारह दोषों से रहित हुए॥616-617॥ घंटा नाद से कल्पवासी देव, शंख के उद्घोष से भवनवासी, पटह के शब्दों से व्यंतर और सिंह नाद से ज्योतिषी देव अपने-अपने आसन के कंपित होने से तीर्थंकर की केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर आकाश को पूरित करने वाली जयघोष के साथ जिनेंद्र प्रभु की पूजन के लिए आए॥618-619॥ उसी समय सौधर्म इंद्र की आज्ञा से धनद-कुबेर इंद्र ने तीनों लोकों की लक्ष्मी के समूह के समान आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले तीस कोस प्रमाण युत समवशरण की रचना की॥620॥ तब आठ भूमियों एवं बारह सभाओं से युक्त इंद्रनीलमणि की भूमि पर स्थापित वह समवशरण स्वर्ण पुंज के समान प्रतिभासित हो रहा था॥621॥ चैत्य प्रासाद भूमि, खातिका भूमि, लता भूमि उपवन भूमि, ध्वज भूमि, कल्पवृक्ष भूमि, भवनभूमि, श्रीमंडप भूमि इस प्रकार ये आठ भूमियाँ सुशोभित थीं॥622॥

अट्ठमभूमीइए चिअ, गंधकुडीए तिदियपीठोवरि य।
सीहासणे वसुपाडिहेरजुदो जिणो विराइदो।।623।।

असोगरुक्ख-सुरपुप्फविट्टि-दुंदहि-सीहासणाइं तह।
दिव्वज्झुणि-छत्त-चमर-भामंडल-पाडिहेराइं।।624।।

सिरिमंडवे उवट्ठिद-भव्वा बारससहासु चायगोव्व।
सुणीअ दिव्वज्झुणिं दु, होज्ज ण मिच्छाइट्ठी तत्थ।।625।।

ण रोयो जम्म-मरणं, आतंकं खासो छीआ हिक्का।
वइर-दोस-कलह-जुत्त-रुद्दपरिणामा ण जीवेसु।।626।।

णेव सासणो मिस्सो, णेव असण्णी णेव अपज्जत्तो।
वियलिंदिय-णेरइया, णेव दुब्भावजुत्तो तत्थ।।627।।

णेव चउआहारो य, कम्मणोकम्माहारेणं विणा।
णेव णीहारो तत्थ, णेव असुहाउबंधणं तह।।628।।

ओमयारमयाइ वा, अणक्खरि-दिव्वज्झुणीए इत्थं।
सयलतच्चोवदेसं, दाएज्ज पसंतभव्वाणं।।629।।

जीवाइ-सडदव्वाणि, लोएभिण्ण-भिण्ण-सहावजुदाणि।
जीवो तेसु-मुत्तमो, अणाइयालादु णादव्वो।।630।।

अष्टम भूमि में गंधकुटी में तृतीय पीठ के ऊपर सिंहासन पर अष्ट प्रातिहार्य सहित श्री जिनेंद्र भगवान् विराजमान थे।।623।। अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि, सिंहासन, दिव्यध्वनि, छत्र, चमर, भामंडल ये आठ प्रातिहार्य जानने चाहिए।।624।। श्री मंडप भूमि में बारह सभाओं में उपस्थित जीव चातक के समान श्री शीतलनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सुन रहे थे। तीर्थंकर की उस सभा में कोई मिथ्यादृष्टि जीव नहीं होता।।625।। वहाँ जीवों में रोग, जन्म, मरण, आतंक, खांसी, छींक, हिचकी, बैर, द्वेष, कलह युक्त रौद्र परिणाम नहीं होते।।626।। वहाँ सासादन सम्यग्दृष्टि, मिश्र गुणस्थानवर्ती नहीं होते। असंज्ञी जीव नहीं होते और ना ही अपर्याप्त होते। वहाँ विकलेन्द्रिय, नारकी व दुर्भाव से युक्त जन भी नहीं होते।।627।। वहाँ कर्म व नोकर्माहार के बिना चार आहार नहीं होते। ना ही निहार होता है और ना ही अशुभ आयु का बंध होता है।।628।। श्री शीतलनाथ भगवान् ने प्रशांत भव्यों के लिए ओमकारमय अथवा अनक्षरी दिव्यध्वनि से सकल तत्त्व का उपदेश इस प्रकार दिया।।629।। लोक में भिन्न-भिन्न स्वभाव से युक्त जीव आदि छः द्रव्य हैं। अनादिकाल से उन सभी में जीव द्रव्य उत्तम जानना चाहिए।।630।।

चेयणजुत्तो जीवो, वण्णाइगुणसंजुत्तो पोग्गलो।
कमसो धम्मधम्माण, लक्खणं गदि-ठिदि-हेदुत्तं।।631।।

आयासलक्खणं तह, अवगाहण-हेदुत्तं णादव्वं।
वट्टणाहेदुत्तं च, कालदव्वस्स विण्णाणीहि।।632।।

जीवो धम्माधम्मा, लोगागासो असंखपदेसी य।
पोग्गलो संखासंखअणंता आगासाणंतो।।633।।

कालासंखा खंडा, पदेसा जीव-ख-धम्माधम्माण।
अखंडा पोग्गलस्स य, खंडाखंड-खंडाखंडा।।634।।

होज्जा जस्स सहावो, जो तं तस्स तच्चं मुणेदव्वं।
अणंतविह-तच्चाइं, पयोजणभूदसत्ताइं दु।।635।।

जीवत्तं जीवतच्च-मजीवेणं सह अजीवत्तं अवि।
देहाइ-अजीव-सहिद-जीवो कम्माणि आसवदे।।636।।

आगमणं तिजोगेहि, हंदि पोग्गलिय-कम्मवग्गणाणं।
सगप्पपदेसे दुविह-आसवो हु दव्वभावादो।।637।।

अप्पपदेसेहिं सह, कम्मवग्गणण्णोण्णं णिबंधंति।
णीर-खीरं व होज्जा, एगमेगो बंधो णिच्चं।।638।।

चेतना से युक्त जीव है, वर्ण आदि गुणों से संयुक्त पुद्गल है, धर्म द्रव्य का लक्षण गतिहेतुत्व एवं अधर्म द्रव्य का लक्षण स्थिति हेतुत्व है।।631।। विशेष ज्ञानियों के द्वारा आकाश का लक्षण अवगाहन हेतुत्व और कालद्रव्य का लक्षण वर्तना हेतुत्व जानना चाहिए।।632।। जीव द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी हैं। पुद्गल द्रव्य संख्यात, असंख्यात व अनंत प्रदेशी है तथा आकाश अनंत प्रदेशी है।।633।। काल द्रव्य असंख्यात है और खंड रूप हैं। जीव द्रव्य, आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य के प्रदेश अखंड हैं। पुद्गल के प्रदेश खंड, अखंड और खंडाखंड हैं।।634।। जिसका को स्वभाव होता है वह उसका तत्त्व जानना चाहिए। तत्त्व के अनेक भेद हैं एवं प्रयोजनभूत सात तत्त्व हैं।।635।। जीव का तत्त्व जीवत्व है। जब जीव अजीव के साथ है तब स्वभाव अजीवत्व भी है। देह आदि अजीव से सहित जीव कर्मों का आस्रव करता है।।636।। त्रियोग से स्वात्म प्रदेश में पौद्गलिक कर्म वर्गण ाओं का आना आस्रव है। द्रव्य और भाव के भेद से आस्रव दो प्रकार का जानना चाहिए।।637।। आत्म प्रदेशों के साथ कर्म वर्गणा परस्पर में बंधती हैं, वह बंध नीर-क्षीर के समान एकमेक होता है।।638।।

ठिदी अणुभाग-बंधो, कसायवसेणं होंति णियमेणं।
पइडि पदेस-बंधो य, कसायजुदजोगपवित्तीइ॥639॥
कसायजुदासवो जो, सो संपरायिगो कसायरहिदो।
इरियापहो य बंधो, उवयारेणं अकसायस्स॥640॥
संवरो कम्मागमण-णिरोहणं दुविहो दव्वभावादु।
समिदि-धम्म-गुत्ति-चरियणुवेक्खादी संवर-हेदू॥641॥
इगदेस-सडणं पुव्व - संचिदकम्मवग्गणाणं सत्थे।
णिज्जरा मुणेदव्वा, दुविहा दव्वभावभेयादु॥642॥
सव्वकम्मविरहिदो य, कम्मगहणसत्तिविहीणो मोक्खो।
णिक्कम्मा णिच्चा चिय, अवियारी अचला सिद्धा य॥643॥
इट्ठवत्थुपदायगं, पुण्णं अणिट्ठदायगं पावं च।
पुण्णपावजुदतच्चं, णवपयत्था दु मुणेदव्वा॥644॥
सयजोयणखेत्तम्मि दु, तत्थ सुभिक्खं केवलिपहावेण।
विहरीअ णिम्मलगगणतले आणणं चउदिसासुं॥645॥
सयजोयणे हिंसा ण, अदयाभावो णो उवसग्गो णो।
सव्वविज्जाईसरो, णेव वड्ढीअ णहकेसा य॥646॥
णेव दु कवलाहारो, णेव पम्हफंदणं णो छाहिया।
तह देवकिदा चउदस-अदिसया वि सुहा होज्ज तदा॥647॥

स्थिति व अनुभाग बंध नियम से कषाय के वश से होता है। जबकि प्रकृति व प्रदेश बंध कषाय युत योग की प्रवृत्ति से होता है॥639॥ जो आस्रव कषाय से युक्त है वह सांपरायिक आस्रव तथा जो कषाय से रहित है वह ईर्यापथ आस्रव होता है। अकषाय जीव के बंध उपचार से कहा जाता है॥640॥ कर्मागमन का निरोध करना संवर है वह द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है। समिति, धर्म, गुप्ति, चारित्र, अनुप्रेक्षा आदि संवर के हेतु हैं॥641॥ पूर्व संचित कर्म वर्गणाओं का एकदेश झरना आगम में निर्जरा जाननी चाहिए, वह द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की जाननी चाहिए॥642॥ सर्व कर्मों से रहित, कर्म ग्रहण की शक्ति से विहीन मोक्ष है। सिद्ध निष्कर्म, नित्य, अविकारी व अचल होते हैं॥643॥ इष्ट वस्तु प्रदायक पुण्य और अनिष्ट दायक पाप है। पुण्य और पाप से युक्त तत्त्व, ये नव पदार्थ जानने चाहिए॥644॥ श्री केवली जिन के प्रभाव से वहाँ सौ योजन क्षेत्र में सुभिक्ष ही था। वे निर्मल आकाश तल में विहार किया करते थे। चारों दिशाओं में मुख, सौ योजन क्षेत्र में हिंसा नहीं थी, अदयाभाव नहीं था, उपसर्ग नहीं था, सर्व विद्या के ईश्वर थे, उनके नख-केशों की वृद्धि नहीं होती थी। उन श्री शीतलनाथ भगवान् के कवलाहार नहीं था, ना तो उनकी पलकें झपकती थीं और ना ही परछाई पड़ती थी। उस समय वहाँ देवकृत चौदह अतिशय भी हुए थे॥645-647॥

वसुदसमहाभासासु, सत्तसयलहुभासासु परिणमेज्ज।
मागधजादिदेवेहि, दिव्वज्झुणी केवलिजिणस्स॥648॥

वड्ढीअ मेत्तिभावो, सव्वदिसाविमला णहो णिरब्भो।
फूलफलाइ-समिद्धो, सव्वरिऊण अइसच्छमही॥649॥

पणवीस-अहिय-बेसय-सहस्स-हेममय-पउमाणि रयीअ।
जिणपदतले विहारे, जयघोसो मंदसुहपवणं॥650॥

सुहगंधोदग-वरिसा, रयाइ-रहिद-पुढ़वी परमहरिसो।
अग्गे धम्मचक्काणि, तहा अट्ठमंगलदव्वाणि॥651॥

आवरणक्खयादो य, अणंतणाणी चिय अणंतदंसी।
अणंतसुहबलजुत्तो, मोहंतरायक्खयादो हु॥652॥

जिणिंद-समवसरणम्मि, गणहरा कुंथुआइ-सत्तसीदी।
सत्तसहस्सकेवली, पंचसत्तरि-सय-विउलमदी॥653॥

बाहत्तरिसया ओहि-णाणी चउदहसया पुव्वहरा य।
सिक्खगा मुणी य अट्ठ-सयणूणसट्ठिसहस्सा तह॥654॥

बारस-सहस्साइं च, विकिरियाधारगा सिरिमुणिराया।
वादिणो तिण्णिसयूण-छहसहस्साइं अइणाणी॥655॥

मागध जाति के देव केवली भगवान् की दिव्यध्वनि को अठारह महाभाषा एवं सात सौ लघुभाषाओं में परिणमित कर देते थे॥648॥ उस समय मैत्री भाव वृद्धिंगत हुआ था, सर्व दिशाएँ निर्मल व आकाश निरभ्र था। भूमि सभी ऋतुओं के फल फूल आदि से समृद्ध अत्यंत स्वच्छ थी॥649॥ विहार में जिनेंद्र प्रभु के पदतल में दो सौ पच्चीस स्वर्णमयी कमलों की रचना की। जयघोष, मंद शुभ पवन, शुभ गंधोदक वृष्टि, रज (धूल) आदि से रहित पृथ्वी, परम हर्ष, आगे-आगे धर्म चक्र तथा अष्ट मंगल द्रव्य रहते थे॥650-651॥ श्री शीतलनाथ जिनेंद्र ज्ञानावरण के क्षय से अनंतज्ञानी और दर्शनावरण के क्षय से अनंतदर्शी, मोहनीय के क्षय से अनंत सुखी और अंतराय कर्म के क्षय से अनंत बल से युक्त हुए थे॥652॥ श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के समवशरण में कुंथु आदि सतासी (87) गणधर थे। सात हजार (7000) केवली एवं पचहत्तर सौ (7500) विपुलमति थे॥653॥ बाहत्तर सौ (7200) अवधिज्ञानी, चौदह सौ (1400) पूर्वधर, उनसठ हजार दो सौ (59,200) शिक्षक मुनि थे॥654॥ बारह हजार (12000) विक्रिया धारक श्री मुनिराज, अति ज्ञानी सत्तावन सौ (5700) वादी थे॥655॥

इत्थं समवसरणम्मि हंदि एयलक्खं सव्वरिसिगणा।
विराइदा अइपसंत-मुत्ती पसमभावधारगा॥656॥

अज्जा तियलक्खाइं, बेघणगुणिदाणि दससहस्साइं।
गणि-धरणा-संजुत्ता, णिप्पच्चवाया अइसंता॥657॥

बेलक्खसावया तह, चदुलक्खसाविगाओ चिय भव्वा।
अणुव्वयजुदा सुद्धा, सगकल्लाणुच्छुगा सया हि॥658॥

बंभोत्तरो य जक्खो, जक्खिणी जालामालिणी देवी।
सिरिसीयलणाहस्स हु, सव्वघादिकम्मणासगस्स॥659॥

जिणिंदस्स पुव्वे चिय, पल्लचदुत्थभागस्स वोच्छेदो।
सव्वकल्लाणकारग-हिययर-जिणधम्मस्स आसी॥660॥

केवलणाणक्केणं, समणसावयधम्मो पयासिदो हु।
मोक्खसुमग्गपवित्ती, आरंभिदा हियकारगा य॥661॥

कुरुजंगल - अंग - बंग - कलिंग - मद्द - पंचाल - मालवेसु।
अवंति-दसण्ण-विदब्भ-अंध-चेदि-कासि-कोसलेसु॥662॥

मगधाइ-देसेसुं च, विहरंतो मोक्खमग्गपहावणं।
तियवस्सूण - पणवीस - सहस्स - पुव्वंतं कुव्वीअ॥663॥

इस प्रकार समवशरण में अति प्रशांत मूर्ति, प्रशम भाव के धारक एक लाख ऋषि विराजमान थे॥656॥ मुख्य गणिनी धरणा आर्यिका सहित अति शांत, विशुद्ध तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं॥657॥ वहाँ अणुव्रत युक्त, शुद्ध, सदा ही स्वकल्याण के इच्छुक दो लाख श्रावक एवं चार लाख श्राविकाएँ विद्यमान थीं॥658॥ सर्वघाति कर्मों के नाशक श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के यक्ष ब्रह्मोत्तर व यक्षिणी ज्वालामालिनी देवी थी॥659॥ श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के पूर्व पल्य के चतुर्थ भाग प्रमाण सर्व कल्याणकारक, हितकर, जिनधर्म का विच्छेद हुआ था॥660॥ अब केवलज्ञान रूपी सूर्य के द्वारा श्रमण व श्रावक धर्म प्रकाशित हुआ था। हितकारक मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति तीर्थंकर प्रभु ने आरंभ की॥661॥ कुरुजांगल, अंग, बंग, कलिंग, मद्र, पंचाल, मालव, अवंति, दशार्ण, विदर्भ, आन्ध्र, चेदि, काशी, कौशल और मगध आदि देशों में विहार करते हुए श्री शीतलनाथ भगवान् ने तीन वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष पूर्व तक मोक्षमार्ग की प्रभावना की॥662-663॥

इंद्रवज्रा छंद

चो घादिकम्मं खयिदं हु जेणं, सुक्केण झाणेण महातवेणं।
होही तहा केवलदंसि-णाणी, तं सीयलं तित्थयरं णमामि।।664।।
दिव्वज्झुणीए सुहमोक्खमग्गो, दिक्खाविदो सव्वभवीण जेणं।
सव्वण्हु-देवो पहु-वीयरायी, सो सीयलो लोए जयेदु णिच्चं।।665।।

मंदाक्रांता छंद

बेलच्छीहिं जुद-जिणवरं पाडिहेरेहि जुत्तं।
सव्वण्हुं वा समवसरणे सोहिदं कोट्ठमज्झे।।
वत्थत्थादो सय विरहिदं घादिकम्मादु हीणं।
मिच्छावादं खयिद-मह तं जेण सामिं सुवंदे।।666।।

जिन्होंने शुक्ल ध्यान व महातप से चार घातिया कर्मों का क्षय किया तथा केवलदर्शी और केवल ज्ञानी हुए उन श्री शीतलनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने दिव्यध्वनि के द्वारा सभी भव्यों के लिए शुभ मोक्षमार्ग प्रशस्त किया। वे सर्वज्ञ देव वीतरागी प्रभु श्री शीतलनाथ भगवान् लोक में सदा जयवंत हों।।664-665।।

जिनके द्वारा मिथ्यामतों का क्षय किया गया उन वस्त्र व अस्त्रों से रहित, घातिया कर्मों से हीन, दोनों अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी से युक्त, अष्ट प्रातिहार्यों से संयुक्त, समवशरण में बारह कोठों के मध्य सुशोभित श्री शीतलनाथ स्वामी को नमस्कार हो।।666।।

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में कैवल्योत्पत्ति व दिव्यध्वनि का वर्णन करने वाला एकादशम सर्ग पूर्ण हुआ।

श्री शीतलनाथ भगवान् का मोक्षगमन

बारसम-सग्गो

आउ-मासेगसेसे, पहुच्चिय सम्मेदसिहरं धरीअ।
जोगणिरोहं किच्चा, पडिमाजोगं विसुद्धीए॥667॥

सजोगिकेवलिट्ठाण-अंते हु सुहुमकिरियापडिपादिं।
तिदियसुक्कज्झाणं च, किच्चा पविसीअ अजोगम्मि॥668॥

अजोगकेवलिठाणे, बेचरिमे एयवेयणीयं तह।
देवगदिं पणदेहं, पणसंघादं पणबंधणं॥669॥

छसंठाण - संहणणं, तियंगुवंग - पणवण्ण - दुग्गंधं।
पणरसं अट्ठफासं, देवाणुपुव्वि - मगुरुलहुं च॥670॥

उवघादं परघादं, उस्सासं च दोण्णिविहाओगदिं।
पत्तेय-मपज्जत्तं, थिरमथिरं सुहमसुहं कम्मं॥671॥

दुब्भगं सुस्सरं तह, दुस्सर - मणादेयं अजसकित्तिं।
णिम्माण-णीयगोदं, बाहत्तरि-पइडी णस्सीअ॥672॥

एक माह आयु के शेष रहने पर श्री शीतलनाथ भगवान् ने सम्मेदशिखर पहुँचकर योग निरोध करके विशुद्धि से प्रतिमायोग धारण किया॥667॥ सयोग केवली गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तृतीय शुक्लध्यान करके अयोगकेवली गुणस्थान में प्रवेश किया॥668॥ अयोगकेवली गुणस्थान के द्वि चरम समय में दोनों में से कोई एक वेदनीय, देवगति, पाँच देह (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण), पाँच संघात, पाँच बंधन, छः संस्थान, तीन अंगोपांग, छः संहनन, पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, श्वासोच्छ्वास, दो विहायोगति, प्रत्येक, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण व नीचगोत्र इन बाहत्तर प्रकृतियों का क्षय किया॥669-672॥

पच्छा चरिमम्मि एगवेयणीयं णराउं णरगदिं च।
पंचिंदिय-जादिं णर-गदिआणुपुव्वि-तस-बादरा॥673॥
पज्जत्तसुहगादेय-जसकित्ती तित्थयरमुच्चगोदं।
तेरसपइडी खयीअ, चदुत्थसुक्कज्झाणबलेण॥674॥
कत्तिगसिद पंचमीइ, पुव्वण्हे पुव्वासाढे मोक्खं।
सम्मेदसिहरस्स चिय, विज्जुदवरकूडादु लहीअ॥675॥
होही सिद्धो सुद्धो, अणुवमो चिय अट्ठगुणसंजुत्तो।
बुद्धो अइणिम्मलो य, संसारकारणक्खयादो॥676॥
राजिद-सीयलणाहो अद्धचंदायार-सिद्धसिलाए।
अणंताणंतसिवेसु, आगमिस्सदि ण भवे कया वि॥677॥
सीयलजिणस्स कमेण, चउअसीदी दा सया अणुबद्धा।
एयारससहस्साणि, अणुत्तरेसुं गदा सिस्सा॥678॥
सिद्धो होही छहसय-समहिद-असीदि-सहस्सा रिसी तह।
चउअसीदिसया गदा, सोहम्मादु गेवेज्जंतं॥679॥
सुविहिजिणे गदे सिवं, णवकोडिसागरोवमे गलिदे दु।
सीयलणाहजिणिंदो, पत्तो णिस्सेयससंपयं॥680॥

इसके पश्चात् चरिम समय में जिसका पूर्व में क्षय हो गया उसके अतिरिक्त एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशः कीर्ति, तीर्थंकर और उच्च गोत्र इन तेरह प्रकृतियों का क्षय चतुर्थ शुक्लध्यान के बल से किया॥673-674॥ तीर्थंकर श्री शीतलनाथ जी ने कार्तिक शुक्ल पंचमी के दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पूर्वाह्न में सम्मेद शिखर के विद्युत्वर कूट से मोक्ष प्राप्त किया॥675॥ संसार के कारणों का क्षय होने से वे अतिनिर्मल, बुद्ध, शुद्ध, अनुपम व अष्ट गुणों से युक्त सिद्ध हुए॥676॥ वे श्री शीतलनाथ जिनेंद्र अर्द्ध चंद्राकार सिद्ध शिला पर अनंतानंत सिद्धों के मध्य विराजमान हुए। वे इस संसार में पुनः कभी नहीं आएँगे॥677॥ श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के चौरासी सौ अनुबद्ध केवली हुए ग्यारह हजार (11,000) शिष्य अनुत्तरों में गए॥678॥ अस्सी हजार छः सौ (80,600) ऋषि सिद्ध हुए। चौरासी सौ (8400) शिष्य सौधर्म स्वर्ग से ग्रैवेयक तक गए॥679॥ श्री सुविधिनाथ भगवान् के मोक्ष जाने पर नौ करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर श्री शीतलनाथ जिनेंद्र ने निःश्रेय पद को प्राप्त किया॥680॥

अद्धपल्लसयसायरणूणाणि इगकोडिसायरहियाणि।
तित्थपवट्टणयालो, तित्थयरसिरिसीयलजिणस्स॥681॥

छसट्ठिलक्खछब्बीस-सहस्साणि संवच्छरणूणाइं।
पणवीससहस्साइं, पुव्वाइं मुणेदव्वाइं॥682॥

तदा सोहम्मिंदेण-सहिद-चउविह-देवा आगच्छीअ।
तत्थ दु मोक्खकल्लाण-महोच्छवं करिदुं भत्तीइ॥683॥

तित्थयर-णहकेसेहि, पुण्णदेहो णिम्माणिदो सुरेहि।
अग्गिकुमार-देवेहि, सग-किरीडुप्पण्ण-अग्गिणा॥684॥

अंगर-तगर-कप्पूर-घिदाइ-सुहदव्वेहि बड्ढिदेणं।
वट्टमाण-आयारं, णस्सिदं वरदव्व-पूयिदं॥685॥

तस्स सुपुज्जतित्थयर-कुंडस्स दक्खिणे गणहर-कुंडो।
संठविदो य सामण्ण-केवलिकुंडो अग्गिजुत्तो॥686॥

समुवट्ठिद-भव्वेहिं, पुण्णवग्गणाजुद-भस्सो धरिदो।
उत्तमंगेसु जिणस्स, आसीव सुपुण्णवग्गणा व्व॥687॥

श्री शीतलनाथ जिनेंद्र का तीर्थ प्रवर्तन काल अर्ध पल्योपम सहित सौ सागर कम एक करोड़ सागर से अधिक है। इस अतिरिक्त काल का प्रमाण छ्यासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम पच्चीस हजार पूर्व जानना चाहिए॥681-682॥ तभी सौधर्म इंद्र सहित चारों प्रकार के देव मोक्ष कल्याणक महोत्सव करने के लिए भक्तिपूर्वक वहाँ आए॥683॥ श्री तीर्थंकर प्रभु के नख व केशों के द्वारा देवों ने संपूर्ण देह का निर्माण किया। पुनः अग्निकुमार देवों ने अपने मुकुटों से उत्पन्न हुई अग्नि, जो अगर-तगर, कर्पूर, घृत आदि शुभ द्रव्यों से बढ़ायी गई थी ऐसी अग्नि से उत्तम द्रव्यों से पूजित उस वर्तमान आकार को नष्ट कर दिया॥684-685॥ अग्नि से युक्त उस पूज्य तीर्थंकर कुंड के दाहिनी ओर अग्नियुक्त गणधर कुंड (गणधर के शरीर का संस्कार करने वाला) एवं बाँयी और अग्नि युक्त सामान्य केवलि कुंड (सामान्य केवली के शरीर का संस्कार करने वाला) स्थापित किया॥686॥ वहाँ पर उपस्थित भव्य जीवों ने पुण्य वर्गणा से युक्त श्री शीतलनाथ भगवान् की देह की भस्म को अपने उत्तम अंगों पर धारण किया मानो वे जिनेंद्र भगवान् का आशीष अथवा उनकी श्रेष्ठ पुण्य वर्गणा ही धारण कर रहे हों॥687॥

पुण्णवंत-देवेहिं आणंद-णाडयं वि करिदं तत्थ।
सुर-णर-खग-मुणिवरेहि, समणुजाणिदं सुभत्तीए॥688॥

सो सीयलणाह-जिणो, सव्वाण सीयलत्त-हेदू होदु।
मज्झं पावकम्माणि, णस्सेदुं सक्केदु णिच्चं॥689॥

सीयलजिणिंदचरियं, जे के वि भव्वा सुणंति पढंते।
खयंते तिव्वपावं, अज्जंति अदिसयपुण्णं ते॥690॥

महापुरिसाण चरियं, हेदू हु रयणत्तयं पप्पोदुं।
तिविहं कम्मं खयिदुं, णिमित्तं दु तिमिरं अक्कोव्व॥691॥

अणेगंत-धम्मं चिय, जाणिदुं सियावाय-जुदा सक्का।
एयंतवायि-मिच्छाइट्ठी भमंति घोरभवम्मि॥692॥

सीयलणाह-दंसणं दंसणमोहक्खय-मुक्खणिमित्तं।
चरिय-पढणं सुणणं च, सण्णाण-चरियाण णिमित्तं॥693॥

अप्पसीयलत्तं णो, देदुं समत्था य विस्स-पदत्था।
एगसीयलणाहो हि, सीयलत्तं देदुं सक्को॥694॥

मए अप्पस्स सीयल-सहावो तं पाविदुं सगचित्ते।
धरेमि जिणस्स पवित्त-पढं चिय परमविसुद्धीए॥695॥

वहाँ पुण्यवान् देवों ने आनंद नामक नाटक भी किया। उस मोक्ष कल्याणक की अनुमोदना देव, मनुष्य, विद्याधर, मुनिवरों ने भक्तिपूर्वक की॥688॥ वे श्री शीतलनाथ जिनेंद्र सभी के लिए शीतलता का हेतु होवें। वे नित्य ही मेरे पाप कर्मों का क्षय करने में समर्थ होवें॥689॥ जो कोई भी श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के चरित्र को सुनते हैं, पढ़ते हैं, वे अपने तीव्र पाप कर्मों का क्षय करते हैं और अतिशय पुण्य का अर्जन करते हैं॥690॥ महापुरुषों का चरित्र रत्नत्रय प्राप्त करने के लिए हेतु है। जिस प्रकार अंधकार के नाश के लिए सूर्य होता है उसी प्रकार तीन प्रकार के कर्मों के क्षय के लिए महापुरुषों का चरित्र निमित्त है॥691॥ स्याद्वाद से युक्त ही अनेकांत धर्म को जानने में समर्थ है। एकांत मिथ्यादृष्टि जीव घोर संसार में परिभ्रमण करते हैं॥692॥ श्री शीतलनाथ भगवान् का दर्शन दर्शन मोहनीय के क्षय का मुख्य निमित्त है। चरित्र का पढ़ना या सुनना, यह सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र का निमित्त है॥693॥ विश्व के सब पदार्थ भी आत्म शीतलता देने में समर्थ नहीं हैं। एक शीतलनाथ भगवान् ही वह शीतलता देने में समर्थ हैं॥694॥ मेरी आत्मा का स्वभाव शीतल है उसको पाने के लिए मैं परम-उत्कृष्ट विशुद्धि से श्री शीतलनाथ भगवान् के पवित्र पद अपने चित्त में धारण करता हूँ॥695॥

तित्थयर - परंपराइ, केवलि - गणहर - सुदकेवली होज्ज।
सिरिविण्हू - णंदिमित्तवराजिद - गोवड्ढण - सूरी॥696॥

भद्दबाहू य गुणहर-अरिहबली धरसेण-पुप्फदंता।
भूदबलि-जदिउसह-जिणचंद-कोंडकुंडुमासामी॥697॥

समंतभद्दो य पुज्जवादो जोगिंदू माणतुंगो य।
अकलंक-रविजिण-वीरसेण-गुणभद्द-णेमिचंदा॥698॥

सुहचंदाइ-सूरिणो, ते सव्वा पणमामि अइ-भत्तीइ।
संतिसायरो तम्हि हि, होज्जा धवल-परंपराए॥699॥

जिणधम्मपहावणा हु, करिदा पारतंत-भारदम्मि अवि।
पुण्णविस्से दरिसिदो, पहावो दियंबरधम्मस्स॥700॥

सिहिलमुणिपरंपरा य, णिम्मला जेण धम्मपहावगेण।
करिदा सिद्धखेत्ताणि, वंदिदूणं बहु-उववासा॥701॥

सीहणिक्कीडिदादिव्वयं करिदं उक्किट्ठरूवेणं।
अण्णं अवि दससहस्स-उववासं किच्चा पाविदं॥702॥

उत्तमसमाहिमरणं, तं चरियचक्कवट्टिं आइरियं।
संतिसायरं वंदे, तिजोगेहि भावविसुद्धीइ॥703॥

तीर्थंकर की परंपरा में सामान्य केवली, गणधर और श्रुत केवली हुए। आचार्य श्री विष्णु, आचार्य श्री नंदिमित्र, आचार्य श्री अपराजित, आचार्य श्री गोवर्द्धन, आचार्य श्री भद्रबाहु, आचार्य श्री गुणधर, आचार्य श्री अर्हद्बली, आचार्य श्री धरसेन स्वामी, आचार्य श्री पुष्पदंत, आचार्य श्री भूतबलि, आचार्य श्री यतिवृषभ, आचार्य श्री जिनचंद्र, आचार्य श्री कुंदकुंद स्वामी, आचार्य श्री उमास्वामी, आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी, आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी, आचार्य श्री योगेंदु देव, आचार्य श्री मानतुंग स्वामी, आचार्य श्री अकलंक देव स्वामी, आचार्य श्री रविषेण स्वामी, आचार्य श्री जिनसेन स्वामी कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री वीरसेन स्वामी, आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी, सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री नेमिचंद्र स्वामी, आचार्य श्री शुभचंद्र स्वामी इत्यादि आचार्य हुए उन सभी को मैं अतिभक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ। उसी धवल परंपरा में आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज हुए। जिन्होंने परतंत्र भारत में जिनधर्म की प्रभावना की, पूरे विश्व में दिगंबर धर्म का प्रभाव दिखाया। जिन धर्म प्रभावक ने शिथिल मुनि परंपरा को निर्मल किया, सिद्ध क्षेत्रों की वंदना करके बहुत उपवास किए, उत्कृष्ट रूप से सिंहनिष्क्रीड़ित आदि व्रत किए। अन्य भी दस हजार उपवास करके जिन्होंने उत्तम समाधिमरण को प्राप्त किया उन चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की मैं तीनों योगों से भाव विशुद्धि पूर्वक वंदना करता हूँ॥696-703॥

तस्स सिस्स-बहुणाणी, पाय-चंद णमि-णेमि-कुंथु सूरी।
सुधम्मो अंतिम-वीरसिंधू जस्स सपदं दत्तं।।704।।

पहाण-पायसायरं, वंदित्तु तस्स सिस्सं जयकित्तिं।
अज्झप्पणाणि-जोगिं, णमामि खेमंकरं सूरिं।।705।।

तस्स सिस्सं च भारद-भूसणं व देसभूषणं सूरिं।
सुद-वड्ढगं पुण देस-गोरवं सया परियंदामि।।706।।

तस्स पहाणं-सिस्सं, विज्जाणंदं सिद्धंतचक्किं च।
रट्ठसंतं विस्सरिसि-सूरिं सेदपिच्छिधारगं।।707।।

कुव्विदा तित्थयरोव्व, जिणधम्मपहावणा इहयालम्मि।
जेणं सुमरिदा लक्खगाहा तं पणमामि णाणिं।।708।।

ताण किवादिट्ठीए, करेदुं सगकल्लाणं खमो हं।
परकल्लाण-णिमित्तं, सुद्धप्पज्झाणं भावेमि।।709।।

थुवंतो पंचगुरुणो, सगगुणणिहि-लद्धीए भत्तीए।
वसुयामे णियगुणवसु-णंदं लहेदुं णमंसामि।।710।।

उनके शिष्य बहुत ज्ञानी आचार्य श्री पायसागर, आ. श्री चंद्रसागर जी, आ. श्री नमिसागर जी, आ. श्री नेमिसागर जी, आचार्य श्री कुंथुसागर जी, आचार्य श्री सुधर्म सागर जी एवं अंतिम श्री वीरसागर जी थे। इन्हीं के लिए आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने अपना आचार्य पद दिया था।।704।। प्रधान आचार्य श्री पायसागर जी की वंदना करके उनके शिष्य अध्यात्म ज्ञानी, योगी, क्षेमंकर आचार्य श्री जयकीर्ति जी को नमस्कार करता हूँ।।705।। पुनः उनके शिष्य श्रुत संवर्द्धक, भारत के आभूषण के समान, देशगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी की स्तुति करता हूँ।।706।। उनके प्रधान शिष्य सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्र संत, विश्व ऋषि, श्वेतपिच्छी धारक, ज्ञानी आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुवर को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने लाख गाथाएँ याद कीं एवं इस काल में तीर्थंकर के समान जिनधर्म की प्रभावना की। उनकी कृपा दृष्टि से ही मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) स्वकल्याण करने में समर्थ एवं पर कल्याण में निमित्त हूँ। मैं शुद्धात्म ध्यान की भावना भाता हूँ। पंच गुरुओं की स्तुति करते हुए स्व गुण निधि की प्राप्ति के लिए, आठों याम निज आठ गुणों का आनंद प्राप्त करने के लिए उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।।707-710।।

पाढग-जणा हंसोव्व, सुहदिट्ठीए सत्थगुणा गहंतु।
अप्पणाणत्ताइ वा, पमादेण संभवो चुक्को॥711॥

सीयलजिणस्स पावण-चरियं तारंगासिद्धखेत्तम्मि।
लिहिदं मए वसुणंदि-सूरीए मम गुरुकिवाए॥712॥

तच्च-गदि-अजीवदव्व-परमप्प-वीरणिव्वाणद्धम्मि य।
सावणे सिद-चोद्दसे, सणिवासरे सवणे गंथो॥713॥

अनुष्टुप छंद

पुण्णो इदं च पुण्णाहे, सव्वकल्लाणकारगो।
अण्णाण-णासगो-णिच्चं, वसुगुणाण वड्ढगो॥714॥

पाठक जन हंस के समान शुभ दृष्टि से शास्त्र के गुणों को ग्रहण करें। अल्प ज्ञान के होने या प्रमाद से यहाँ चूक संभव है॥711॥ श्री शीतलनाथ जिनेंद्र का पावन चरित्र तारंगा सिद्ध क्षेत्र पर गुरु कृपा से मुझ आचार्य वसुनंदी के द्वारा लिखा गया॥712॥

तत्त्व (7) गति (4) अजीव द्रव्य (5) व परमात्मा (2) 'अंकानां वामतो गतिः' से 2547 वीरनिर्वाण संवत् में श्रावण शुक्ल चतुर्दशी के दिन, शनिवार, श्रवण नक्षत्र में शुभ दिवस में सर्व कल्याण कारक, नित्य अज्ञान का नाश करने वाला, अष्ट गुणों का वर्द्धन करने वाला यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ॥713-714॥

इस प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित श्री शीतलनाथ चरित्र नामक महाकाव्य में भगवान् की निर्वाणोत्पत्ति का वर्णन करने वाला अंतिम द्वादशम सर्ग एवं पुण्य वर्द्धक शीतलनाथ चरित्र को कहने वाला यह ग्रंथ पूर्ण हुआ॥

॥ गंथो समत्तो ॥

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य

1. प्राकृत वाणी भाग-1, 2, 3
2. अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
3. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
4. अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
5. जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
6. जदि-किदि-कम्मं (यति कृतिकर्म)
7. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
8. णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
9. तच्चसारो (तत्त्व सार)
10. धम्म-सुत्तं (धर्म सूत्र)
11. रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
12. सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13. अप्पणिब्भर भारदो (आत्मनिर्भर भारत)
14. विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्या वसु श्रावकाचार)
15. अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
16. अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
17. णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
18. मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
19. मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
20. विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
21. विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
22. समवसरण सोहा (समवशरण शोभा)
23. वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
24. अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
25. कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
26. को विवेगी (विवेकी कौन)
27. पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
28. तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
29. रयणकंडो (सूक्ति कोश)
30. धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)
31. कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
32. खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33. सिरि सीयलणाह चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
34. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
35. समणायारो (श्रमणाचार)

भावार्थ

1. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
2. णिग्गंथ-थुदि (निर्ग्रंथ स्तुति)
3. तच्च-सारो (तत्त्वसार)
4. रट्ठसंति-महाजण्णो (राष्ट्रशांति महायज्ञ)
5. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
6. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)

टीका ग्रंथ

1. प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)
2. वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3. नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)

इंग्लिश साहित्य

Inspirational Tales Part- 1 & 2

वाचना साहित्य

1. मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)
2. बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3. शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)
4. स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य

1. आईना मेरे देश का
2. उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3. उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
4. उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)
5. उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)
6. उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7. उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)
8. उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9. उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)
10. उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)
12. खुशी के आँसू
13. खोज क्यों रोज-रोज
14. गुरुत्तं भाग 1-15
15. चूको मत
16. जय बजरंगबली
17. जीवन का सहारा
18. ठहरो! ऐसे चलो
19. तैयारी जीत की
20. दशामृत
21. धर्म की महिमा
22. ना मिटना बुरा है न पिटना
23. नारी का धवल पक्ष
24. शायद यही सच है
25. श्रुत निर्झरी
26. सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
27. सीप का मोती (महावीर जयंती)
28. स्वाती की बूँद

हिंदी गद्य रचना

1. अन्तर्यात्रा
2. अच्छी बातें
3. आज का निर्णय
4. आ जाओ प्रकृति की गोद में
5. आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान
6. आहारदान
7. एक हजार आठ
8. कलम पट्टी बुद्धिका
9. गागर में सागर
10. गुरु कृपा
11. गुरुवर तेरा साथ
12. जिन सिद्धांत महोदधि
13. डॉक्टरों से मुक्ति
14. दान के अचिन्त्य प्रभाव
15. धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)
16. धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17. निज अवलोकन
18. वसु विचार
19. वसुनन्दी उवाच
20. मीठे प्रवचन (भाग 1-6)
21. रोहिणी व्रत कथा
22. स्वप्न विचार
23. सद्गुरु की सीख
24. सफलता के सूत्र
25. सर्वोदयी नैतिक धर्म
26. संस्कारादित्य
27. हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1. अक्षरातीत
2. कल्याणी
3. चैन की जिंदगी
4. ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5. मुक्ति दूत के मुक्तक
6. हाइकू
7. हीरों का खजाना

विधान रचना

1. कल्याण मंदिर विधान
2. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3. चौसठऋद्धि विधान
4. णमोकार महार्चना
5. दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)
6. यागमंडल विधान
7. समवशरण महार्चना
8. श्री नंदीश्वर विधान
9. श्री सम्मेदशिखर विधान
10. श्री अजितनाथ विधान
11. श्री संभवनाथ विधान
12. श्री पद्मप्रभ विधान
13. श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)
14. श्री चंद्रप्रभ विधान
15. श्री पुष्पदंत विधान
16. श्री शांतिनाथ विधान
17. श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
18. श्री नेमिनाथ विधान
19. श्री महावीर विधान
20. श्री जम्बूस्वामी विधान
21. श्री भक्तामर विधान
22. श्री सर्वतोभद्र महार्चना

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य

1. आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)
2. आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य जी)
3. आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)
4. कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. कर्म प्रकृति (सिद्धांत चक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)
6. गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7. चार श्रावकाचार संग्रह
8. जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9. जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)
10. जिन सहस्रनाम स्त्रोत
11. तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)
12. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13. तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)
14. तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15. तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)
16. तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17. धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)
18. धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19. ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)
20. नीतिसार समुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदी स्वामी जी)
21. पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)
22. प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23 पंचरत्न
24. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्र स्वामी जी)
25. मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)
26. भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी जी स्वामी)
27. भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)
28. मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्ति स्वामी जी)
29. योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबालचंद्र जी)
30. योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31. रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)
32. वसुऋद्धि
    - रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)
    - पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)
    - लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)
    - अर्हत प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)
    - स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
    - इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
    - वैराग्यमणि माला (आ. श्री विशाल कीर्ति जी)
    - ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33. सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगति स्वामी जी)
34. सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35. समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
36. समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37. सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)
38. विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय जी)

प्रथमानुयोग साहित्य

1. अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)
2. आराधना कथा कोष (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3. करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)
4. कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)
6. चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7. चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)
8. चेलना चारित्र
9. चंद्रप्रभ चरित्र
10. चौबीसी पुराण
11. जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
12. त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
14. धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15. धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
16. नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17. नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)
18. प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19. पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)
20. पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21. पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)
22. पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23. भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)
24. भद्रबाहु चरित्र
25. मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
26. महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27. महापुराण (भाग 1-2)
28. महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29. मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)
30. यशोधर चरित्र
31. रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)
32. रोहिणी व्रत कथा
33. व्रत कथा संग्रह
34. वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35. विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)
36. वीर वर्धमान चरित्र
37. श्रेणिक चरित्र
38. श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39. श्री जम्बूस्वामी जी चरित्र (श्री वीर कवि)
40. शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41. सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)
42. सम्यक्त्व कौमुदी
43. सती मनोरमा
44. सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45. सुरसुंदरी चरित्र
46. सुलोचना चरित्र
47. सुकुमाल चरित्र
48. सुशीला उपन्यास
49. सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बैरया)
50. सुभौम चरित्र
51. हनुमान चरित्र
52. क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान
   - वास्तु निवारण
   - मृत्युंजय (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्त्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्त्रानाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   - भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल))
   - शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
   - सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)
5. कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)
6. तत्त्वोपदेश (छहढ़ाला) (पुं. प्रवर दौलतराम जी)
7. दिव्य लक्ष्य (संकलन-हिंदी पाठ, स्तुति आदि)
8. धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
10. भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11. विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)
12. सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13. संसार का अंत
14. स्वास्थ्य बोधामृत

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1. अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
2. पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)
3. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
4. दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्वनंदनी, वर्चस्वनंदनी)
5. स्मृति पटल से भाग 1-2 (आ. श्री वर्धस्वनंदनी)
6. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
7. गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)
8. परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
9. स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)
10. स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
11. हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)
12. वसु सुबंध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद्र जी जैन)
13. समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')